ಕರ್ನಾಟಕ ರಾಜ್ಯ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ
ಮಾನಸಗಂಗೋತ್ರಿ, ಮೈಸೂರು – 570 006.

Karnataka State Open University
Manasagangothri, Mysore - 570 006.

M. A. Previous HINDI
Course / Paper - II

आधुनिक हिन्दी काव्य

जयशंकर प्रसाद और

' कामायनी '

Block - 6

ಉನ್ನತ ಶಿಕ್ಷಣಕ್ಕಾಗಿ ಇರುವ ಅವಕಾಶಗಳನ್ನು ಹೆಚ್ಚಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮತ್ತು ಶಿಕ್ಷಣವನ್ನು ಪ್ರಜಾತಂತ್ರೀಕರಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ ವ್ಯವಸ್ಥೆಯನ್ನು ಆರಂಭಿಸಲಾಗಿದೆ.

ರಾಷ್ಟ್ರೀಯ ಶಿಕ್ಷಣ ನೀತಿ 1986

The Open University system has been initiated in order to augment opportunities for higher education and as an instrument of democratising education.

National Education Policy 1986

हिन्दी एम .ए . प्रीवियस - द्वितीय पत्र

KSOU
MGM -06

Hindi
Paper / Course - II

ब्लाक सं

6

" आधुनिक हिन्दी काव्य "

Unit No. 20 to 22
अनुक्रमणिका : -

Page No.

इकाई 20 आनंद सर्ग और इड़ा का चरित्र चित्रण 1 - 36

इकाई 21 कामायनी में मनो विज्ञान एवं दर्शन 37 - 64

इकाई 22 कामायनी का रूपकत्व और प्रकृति - चित्रण 65 - 86

पाठ्यक्रम अभिकल्प तथा संपादकीय समिति

प्रो.एम.जी.कृष्णन
उप कुलपति तथा अध्यक्ष
क. रा. मु. वि. विद्यालय,
मैसूर - 6

प्रो.एस.एन.विक्रमराज अरस
डीन (शैक्षणिक) - संयोजक
क. रा. मु. वि. विद्यालय
मैसूर - 6

डॉ. शशिधर. एल. जी
रीडर, हिन्दी विभाग,
मैसूर विश्वविद्यालय,
मानस गंगोत्री
मैसूर - 6

संपादक

डॉ.कांबले अशोक
अध्यक्षा, हिन्दी विभाग
क. रा. मु. वि. विद्यालय
मैसूर - 6

संयोजक

पाठ्यक्रम की लेखिका — **ब्लाक - 6**

डॉ. विमला. एम.
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
बेंगलूर विश्व विद्यालय
बेंगलूर

इकाई 20 - 22 तक

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, मैसूर शैक्षणिक अनुभाग द्वारा निर्मित।

सभी अधिकार सुरक्षित। कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति प्राप्त किए बिना, इस कार्य के किसी भी अंश को किसी भी रूप में अनुलिपित या किसी अन्य माध्यम द्वारा प्रतिकृति नहीं किया जाएगा।

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम पर अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मानस गंगोत्री, मैसूर - 6 से प्राप्त की जा सकती है।

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से **रजिस्ट्रार**
(प्रशासन) *द्वारा मुद्रित व प्रकाशित।*

ब्लाक परिचय

प्रिय विद्यार्थि - बन्धु ,

ब्लाक पाँच के अंतर्गत आपने इकाइ 17 में ' कामायनी का चिंता सर्ग और मनु का चरित्र चित्रण ' इकाई 18 में ' श्रद्धा सर्ग और श्रद्धा का चरित्र चित्रण ' तथा इकाई 19 में ' रहस्य सर्ग का व्याख्यात्मक विवेचन ' के संबंध में अध्ययन किया है।

प्रस्तुत ब्लाक के अंतर्गत इकाइ 20 में ' आनंद सर्ग और इड़ा का चरित्र चित्रण ' इकाई 21 में ' कामायनी में मनो विज्ञान एवं दर्शन ' तथा इकाई 22 में ' कामायनी का रूपकत्व और प्रकृति चित्रण ' संबंधी विषय का अध्ययन करेंगे।

डॉ.कांबले अशोक
अध्यक्ष ,
हिन्दी अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग
क. रा. मु. वि. विद्यालय,
मैसूर - 6

इकाई 20
आनंद सर्ग और इड़ा का चरित्र चित्रण

इकाई की रूप रेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 आनंद सर्ग - कथा वस्तु

20.3 आनंद सर्ग - व्याख्या भाग

20.4 इड़ा का चरित्र चित्रण

20.5 इड़ा का चारित्रिक विशेषतायें

- 20.5.1 अनुपम सौन्दर्य
- 20.5.2 वाक्पटुता
- 20.5.3 जनप्रिय-साम्राज्ञी
- 20.5.4 व्यवहार-कुशल
- 20.5.5 शक्तिशाली नारी
- 20.5.6 श्रद्धामयी
- 20.5.7 रुपकतत्व

20.6 निष्कर्श

20.7 बोध प्रश्न

20.8 नमूने का उत्तर

20.9 सहायक पुस्तकें

20.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आनंद सर्ग और इड़ा के चरित्र चित्रण का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप -

- आनंद सर्ग की कथावस्तु से परिचित हो जाएँगे।
- आनंद सर्ग की प्रमुख विशेषताओं की समीक्षा कर सकेंगे।

- इड़ा का चरित्र चित्रण प्रस्तुत कर सकेंगे।
- इड़ा कि चरित्रगत विशेषताओं को जान सकेंगे।
- कामायनी में इड़ा का क्या स्थान है इस विषय की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आनंद सर्ग के पदों की व्याख्या प्रस्तुत कर सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

प्रसादजी आनंदवादी कवि थे। भारत में आनंदवाद की धारा प्राचीन काल से कभी तीव्र, कभी मन्दगति से बहती चली आ रही है। अतः प्रसादजी का आनंदवाद कोई नई आथवा अन्य देशीय वस्तु नहीं। इसी श्रद्धा मूलक आनंदवाद को अपनाने पर वर्तमान युग का भी प्रभाव पड़ा है। आज के युग में व्यक्ति किस प्रकार बुद्धि द्वारा प्रताड़ित होकर आनंद की खोज में भटकता है, यह देखकर कवि व्यथित हो उठता है। बुद्धि द्वारा अनेक प्रकार के आविष्कार कर मनुष्य ने सभी प्रकार के विलास-साधन उपस्थित किये, फिर भी उसकी आत्मा अशान्त ही रही। अतः कामायनी में व्यंग रूप में आधुनिक युग के लिए एक सन्देश भी निहित है।

कामाय्नी में प्रसादजी ने समरसता के तीन रूपों का दिग्दर्शन कराया है- व्यक्ति की समरसता, समाज की समरसता तथा प्रकृति और पुरुष की समरसता। व्यक्ति की समरसता श्रद्धा के जीवन में मिलती है। समरसता के अभाव के कारण सारस्वत प्रदेश का समाज विशृंखल हो जाता है। प्रकृति और मनुष्य की समरसता का रूप हमें आनन्द सर्ग में दिखाई देता है। जीवन के दुःखमय रहने का एकमात्र कारण समरसता का अभाव ही है। ज्ञान, इच्छा और कर्म के समन्वय से ही आनंद की प्राप्ति सम्भव है। यदि मनुष्य कर्म न करे तो इच्छा की पूर्ति संभव नहीं और यदि ज्ञान नहीं है, तो उचित कार्य करने में असमर्थ रहेगा। अतः जीवन में तीनों के समन्वय के बिना आनंद की प्राप्ति सम्भव नहीं। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कवि ने तीनों का समन्वय कराया है।

20.2 आनंद सर्ग - कथा वस्तु

इड़ा और मानव ने सारस्वत नगर की उचित रूप में शासनव्यवस्था की। नियमों को ऐसा सुव्यवस्थित एवं लोक हितकर बनाया, जिससे वहाँ की जनता

धन-धान्य, वैभव एवं सुख-समृद्धि से परिपूर्ण हो उठी। एक दिन बालकों, युवक,-युवतियों का दल इड़ा तथा मानव के साथ श्रद्धा तथा मनु के दर्शन के लिए कैलाश पर्वत की ओर चल दिया। सारस्वत नगर से यात्रियों का यह दल आगे बढ़ता हुआ मार्ग में पर्वतीय तथा नदी के तटवर्ती प्रान्तों से अग्रसर हो रहा था। उस दल में धर्म के प्रतिनिधि के रूप में एक वृषभ भी था, जो मंथर गति से आगे बढ़ रहा था। उसके साथ बंधा हुआ घंटा उसकी मंद चाल के अनुरूप नाद कर रहा था। उस वृषभ के ऊपर सोम-लताएँ लदी हुई थीं। कुमार ने उस वृषभ की रस्सी अपने बाएँ हाथ में पकड़ी हुई थी और दाहिने हाथ में त्रिशूल धारण कर रहा था। इस प्रकार वृषभ के एक ओर तो कुमार चल रहा था तो दूसरी ओर काषाय वस्त्र धारण कर शान्त भाव से इड़ा चल रही थी। पीछे-पीछे छोटे-छोटे बालक खेलते-कूदते एवं किलकारियाँ मारते हुए चल रहे थे। उनके साथ-साथ युवक मनोविनोद करते हुए तथा मंगलगीत सुकोमल स्वर में गाती हुई युवतियाँ-महिलाएँ - सभी चल रहे थे। सभी लोग अपना सामान चमरी मृगों पर लादे हुए थे। कुछ चमरी मृगों पर बालक भी आसीन थे। छोटे-छोटे बच्चे अपनी माताओं की अँगुली पकड़कर चल रहे थे। सभी छोटे-छोटे बच्चे अपनी यात्रा के विषय में बहुत ही जिज्ञासु थे। बाल-स्वभाव के अनुसार एक बच्चा अपनी माँ से पूछने लगा कि माँ तुम तो कह रही थीं कि अब थोड़ी ही दूर चलना है - इतनी दूर आ गए तुम हो कि आगे कि ओर बराबर बड़ती ही जा रही हो - अभी वह तीर्थ-स्थान न जाने कितनी दूर है। वह बालक इड़ा के पास पहुँचकर उससे तीर्थ-स्थान के विषय में जानने के लिए हठ करने लगा। इड़ा ने उस बालक को बतलाया कि वह स्थान परम पवित्र है - वह तपोभूमि है। इड़ा ने आगे बतलाया कि एक दिन एक साधु-मनीषी अपनी पत्नी के साथ संसार की व्यथा-वेदनाओं से विकल होकर परम शान्ति की खोज में चल आया था। उसके हृदय में व्याप्त संताप के फलस्वरूप समूचा वन-प्रान्त जल उठा था। उस मनस्वी की पत्नी के प्रयत्न सें सारा वन हरा-भरा हो गया। सर्वत्र हरियाली छा गई। सर्वत्र प्रसन्नता बिखर उठी। तभी से वे दोनों सांसारिक जनों की सेवा करके उन्हें सुख-शान्ति देते रहते हैं। वहीं कामनाओं की पूर्ति करने वाला एक सुन्दर मानसरोवर है। उस मानसरोवर के जल पान से प्राणी सुख-शान्ति प्राप्त करता है। बालक द्वारा बृषभ के विषय में कुतूहल जाग्रत होने पर इड़ा ने बतलाया कि हम अपने साथ इस वृषभ को इसलिए ले जा रहे हैं कि वहाँ उसे हम

पूर्णतया स्वच्छन्द कर देंगे। पद-यात्रा से हमारे जीवन के अभावों की पूर्ति हो जायेगी। अब वे सभी एक समतल घाटी पर पहुँच गए। उतार अधिक होने के कारण आगे बढ़ने में सभी ने सावधानी से काम लिया। उस समतल घाटी में सर्वत्र हरीतिमा छाई हुई थी। पेड़-पौधे सभी सुन्दर दिखलाई दे रहे थे, सामने उन्हें हिमाच्छादित हिमालय पर्वत दिखलाई दे रहा था। आगे बढ़कर उन्होंने सुरम्य वन तथा सरोवर देखा। उस समय संध्या हो रही थी। उस संध्याकाल की छटा में कैलाश पर्वत ऐसा दिखलाई दे रहा था मानो वह किसी योगी के रूप में समाधि धारण किए हुए आसीन हो। पक्षियों का कलनिनाद वहाँ पर उस समय व्याप्त हो रहा था। उसी मानसरोवर के समीप मनु ध्यान में लीन थे। उन्हीं के निकट उनकी पत्नी श्रद्धा अपनी अंजलि में पुष्प लेकर खड़ी हुई थी। श्रद्धा ने मनु के चरणों में अपनी पुष्पांजलि समर्पित कर दी, जिससे आकाश में भौरों की सुमधुर गुंजार कर्णगोचर हो रही थी। अभी तक मनु की ध्यानावस्था भंग नहीं हुई थी। यात्रियों के दल ने श्रद्धा तथा मनु-दोनों को पहचान लिया और उनके चरणों में नतशिर हो गए। इतनी ही देर में इड़ा तथा कुमार भी बृषभ क़ो साथ में लिए हुए वहाँ पहुँच गए। कुमार ने अपनी माता श्रद्धा को देखा और उसकी गोद में बैठ गया। इड़ा श्रद्धा के पुनीत चरणों में नतमस्तक हो गई। इड़ा ने कहा कि मेरा जीवन आज धन्य हो गया। तुम्हारी ममता मुझे यहाँ तक खींच लाई। मैं अपने जीवन में आज तक भूल में ही रही और दूसरों को भी भूलावे में रखा था। सारस्वत नगर की समस्त प्रजा स्वजनों के रूप में है। इसी आत्मीयता के कारण अब एक परिवार के रूप में सभी सुख-शान्ति से रह रहे हैं। अब उनमें किसी प्रकार का कलहच्छेद नहीं रह गया है। आज हम सभी एक दल के रूप में यात्रा करने के हेतु यहाँ आए हैं ताकि हमारे समस्त पाप-कलुष पूर्ण रूप से दूर हो सकें मनु ने ध्यान-स्मतित नेत्रों को खोला। मनु ने मन्द स्मितिपूर्वक कैलाश पर्वत की ओर संकेत करते हुए कहा कि यहाँ अपने-पराये का कोई भेद नहीं है। सब एक हैं - तुम सब मेरे अवयवों के रूप में हो। यहाँ न कोई संतप्त है और न कोई पापाचारी सभी समान हैं। यह समूचा विश्व उसी चिति शक्ति का विराट् शरीर है, यह सारा संसार सुख-दुःख से युक्त होते हुए भी सबके दुःख-सुख में हाथ बंटाना चाहिए - यही तो प्राणियों का वास्तविक स्वरूप है। मनु की बातों सुनकर श्रद्धा के मुखमण्डल पर स्मिति की लहर दौड़ा गई, जिससे वहां दिव्य प्रकाश फैल गया। मधुर ध्वनियाँ गूँजने लगीं। सुगंध समीर बहने लगा। सम्पूर्ण वातावरण सुखमय एवं सुगंधिमय हो उठा। पुष्पों का पराग बिखरने

लगा। राकापति की शुभ्र किरणों नृत्य करती हुई दिखलाई देने लगीं। हिमालय पर्वत चंन्द्रमा को मुकुट रूप में धारण किए सुशोभित हो रहा था। सभी लोग वहाँ अभिन्नता की भावना से युक्त थे। जड़ और चेतन में कोई भी भेदभाव नहीं रह गया था। सामरस्य की भावना से सभी पुलकित हो उठे। सभी अखण्ड आनन्द की अनुभूति करने लगे।

आनन्द सर्ग में कवि प्रसाद ने जीवन के चरम लक्ष्य आनन्द को सुनिरूपित किया है, तदनुकूल इस सर्ग का नामकरण भी किया है। उन्होंने यह भी बतलाया है कि सेवा, दया, प्रेम, त्याग एवं औदार्य आदि सुन्दर वृत्तियों के अवलंबन से ही मानव जीवन सुखद होकर निखर सकता है। अमंद प्रतीति होने पर ही जीवन में सामरस्यपूर्ण वातावरण की सुमधुर सृष्टि हो सकती है। तभी बड़े-छोटे, जड़ तथा चेतन का भेदभाव मिट जाता है- तभी अखण्ड आनन्द की प्राप्ति की जा सकती है। सन्ध्या के वर्णन में कवि ने छायावादी शैली का प्रयोग किया है, जो अपने में नवीन है। इसके अतिरिक्त लाक्षणिक, प्रतीकात्मक एवं व्यंजनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। कवि द्वारा प्रस्तुत बिम्बविधान मनोहर एवं प्रभावोत्पादक है। उनके विचारों पर प्रत्तयभिज्ञादर्शनम् का प्रभाव स्पष्टतः दिखलाई देता है। यहाँ दर्शनिक विचारों की शुष्कता को अपनी काव्य-प्रतिभा द्वारा सरस एवं प्रभावोत्पादक बनाने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

20.3 आनंद सर्ग - व्याख्या भाग

"चलता था धीरे-धीरे वह एक यात्रियों का दल, सरिता के सम्य पुलिन में गिरिपथ से, ले निज संबल। था सोम लता से आवृतत धबल, धर्म बजता तालों में उसकी थी मंथर गति-विधि।"

शब्दार्थ-सरिता=नदी। समय=रमणीक। पुलिन=तट, किनार। गिरि -पथ=पहाड़ी रास्ता। निज =अपना। सम्बल=सहारा। आवृत=ढका हुआ। वृष=बैल। धवल=सफेद रंग का। मैथर=धीमी, झूमती हुई।

भावार्थ -इड़ा अपने साथ कुमार (मानव)और सारसवत नगर के निवासियों को लेकर उस स्थान की तीर्थ-यात्रा करने निकली है, जहाँ हिमालय पर कैलास के समीप श्रद्धा और मनु रहते है। कवि उसी तिर्थ यात्रियों का एक दल धीरे-दीरे पहाडी रासते पर चछा जा रह था।

उस दल के साथ धर्मे का प्रतिनिधि माना जाने वाला एक सफेद रंग का बैल भी चल रहा था, जिस पर सोमलता लदी हुई थी। वह बैल धीरे-धीरे चल रहा था। और उसकी इस मनद गति के साथ, उसके गले में पड़ा हुआ घंटा एक निश्चित लय के साथ बजता चलता था।

टिप्पणि- भारतिय संस्कृति में श्वेत रंग के बैल को धर्म का प्रतीक माना गया है। इस छन्द में उसे सोमलता से आवृत दिखाया गया है। सौमलता देवों के भोग की प्रतिक मानी गयी है। इसी सर्ग में, आगे चल कर, इड़ा यह कहती है कि वे लोग कैलास पहुँच कर इस वृषभ का उत्सर्ग कर देंगे, स्वच्छन्द छोड़ देंगे। इससे यह अभिप्राय निकलता है कि सारस्वत नगर निवासी अब देवों के उस भो-प्रधान धर्म को कैलास पर जाकर त्याग दैंगे। इससे यह परिणाम निकलेगा कि भविष्य में उस संकीर्ण, एकांकीऋधर्म के स्थान पर एक उदार, व्यापक-धर्म का प्रसार होगा जो मानवता का व्यापक विकास और प्रसार करेगा।

"वृष-रज्जु वाम कर में था दक्षिण त्रिशूल से शोभित, मानव था साथ उसी के मुख पर था तेज अपरिमित। केहरि-किशेर से अभिनव अवयव प्रस्फुटित हुए थे, योवन गभीर हुआ था जिसमें कुछ भाव नये थे।"

शब्दार्थ- वृष-सज्जु=बैल के गले में बंधी रस्सी। वाम कर=बाँए हाथ में। दक्षिण=दाँए हाथ में। अपरिमित=अपार। केहरि-किशोर=सिंह का बच्चा। अभिनब=नए। अवयव=अंग। प्रस्फुटित=विकसित। गम्खभीर=उहिप्त।

भावार्थ - कवि कहता है - उस बैल के साथ मानव भी चल रहा था। उसके बाँए हाथ में बैल की रस्सी थी और दाहिने हाथ में त्रिशूल सुशोभित था। उसके मुख पर अपार तेज झलक रहा था।

मानव के शारीरिक अंग-प्रत्यंग सिंह के किशोर अवस्था बाले बच्चे के अंगों के समान नए रूप से विकसित थे, अर्थात्-शेर के बच्चे के अंगों के समान पुष्ट, उभरे और मजबूत थे। उसमें योबन की गम्मीरता आ गयी थी इसीलिए उसके मुख पर कुछ नए भाव झलक रहे थे। अर्थात् उसका योवन उहिप्त हो रहा था और उसके मुख पर योवन-सुलम नवीन भाव प्रस्फुटित हो रहे थे।

टिप्पणी- उपर्युक्त वर्णन के अनुसार अब मानव (कुमार) योवनावस्था में प्रवेश कर रहा है। यह मानव ही आगे चल कर उदार, व्यापक और सामरस्य-प्रधान

मानव-संस्कृति की स्थापना करेगा। प्रसाद जी ने मानव के जिस विकासशील व्यक्तित्व का निर्माण किया है, उसे तीन प्रकार की विशिष्टताओं से सम्पन्न दिखाया है। डां द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने मानव के उस मिश्रित व्यक्तित्व विश्लेषण करते हुए लिखा है -

"मानव के रूप में प्रसाद जी ने समारसता एवं मानवता के एक श्रेष्ठ प्रचारक का रूप प्रस्तुत किया है। वह मनु-पुत्र होने के कारण मननशील है, श्रद्दा पुत्र होने से हृदय की उदार वृत्तियों से सम्पन्न है और इड़ा के साथ रहने के कारण ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी बौद्धिक गुणों से भी ओतप्रोत दिखाया गया है। इस प्रकार समरसता के लिए आवश्यक उपर्युक्त तीनो गुणों का समन्वय कुमार के रूप में हो गया है। " इस सम्बन्ध में हमें एक बात कहनी है। 'कामायनी' में आरम्भ से अन्त तक कुमार का व्यक्तित्व एक मूक दर्शक-पात्र का सा ही अधिक रहता है। हम उसे कहीं क्रियाशील नही देखते। इसका कारण यह है कि प्रसाद जी ने सांकेतिक शैली द्वारा ही उसके व्यक्तित्व का निर्माण करते हूए केवल उस सम्भावनाओं के प्रति संकेत कर दिया है जो माता-पिता की विशिष्टताओं से समन्वित व्यक्तित्व में साकार हो सकती है।

"सुनती हूँ एक मनस्वी था वहाँ एक दिन आया। वह जगती की ज्वाला से अति-विकल रहा झुलसाया। उसकी वह जन भयानक फैली गिरि अंचल में पिर, दावग्रि प्रखस लपचों ने कर दिया सघन बन अस्थिर।"

शब्दार्थ-मनस्वी-मननशील, विद्वान। जगती की ज्वाला-संसार के दुख। विकल-व्याकुल। गिरि-अचल-पर्व-प्रदेश। दावाग्रि-वन में लगने वाली अग्नि प्रखर-तेज। सघन बन-भयानक बन। अस्थिर-व्याकुल।

भावार्थ-मैंने सुना है कि एक मननशील विद्वान पुरुष संसार के दुखों से दग्ध अत्यन्त व्याकुल बना एक दिन वहाँ आया था। उसके बहाँ आने से उसके दुखों की भयानक जलन उस सारे पर्वत प्रदेश में फैल गई। उसके दुख की उस ज्वाला ने भयानक दावाग्मि की लपटों के समान भयानक बन उस सारे प्रदेश को व्याकुल कर डाला। अर्थात् उसने सारे प्रदेश को अपने ही जैसे दुखों से व्यकुल बना दिया।

टिप्पणी- यहाँ इड़ा मनु को ही सारस्वत-प्रदेश के सारे कष्टों और पुनर्विनाश के लिए जिम्मेदार ठहरा रही है। मनु ने अपनी व्यथा को ही उस सारे प्रदेश में व्याप्त

M.A HINDI COUR -2 BLOCK-6 FNO.-2 BACK

कर डाला था। परन्तु फिर मनु ने वहाँ से भाग कर श्रद्धा के सहयोग से हिमालय पर तपस्या कर अपने सारे कलुष को धो दिया था। इसी कारण अब इड़ा के मन में उनके प्रति क्षोभ न रह कर श्रद्धा-जीवन सम्मान का भाव है। मनु उसके लिए पूज्य बन गए है।

"थी अर्धांगिनी उसी की जो उसे खोजती आयी, यह दशा देख, करुण की-वर्षा दृग में भर लायी। बरदान बने फिर उसके आँसू, करते जग-मंगल, सब ताप शांत होकर, वन हो गया हरित, सुख-शीतल।"

शब्दार्थ- अर्दांगिनी=पत्नी। दृग में =आखों में। जग-मंगल=संसार का कल्याण। हरित=हरा-भरा।

भावार्थ- इड़ा उपर्यक्त वर्णन को आगे बढ़ाती हुई कहती है-जो स्त्री उसे खोजती हुई यहाँ आई थी, वह उसकी पत्नी थी और उसकी (मनुकी) उस भयानक दशा (घायल दशा) को देख वह करुणा से द्रवित हो उठी थी तथा उसके नेत्रों में आँसुओं की वर्षा-सी होने लगी थी।

परन्तु फ्रिर उसके वे आँसू सबके लिए वरदान के समान कल्याणकारी बन सारे संसार का कल्याण करने लगे। करुणा से द्रवित उसके उन आंसुओं की वर्षा से उस प्रदेश का सारा ताप (दुख) शान्त हो गया और दावग्नि से जला हुआ यह प्रदेश पुनः शीतल, सुखपूर्ण बन लहलहा उठा, हहा-भरा बन गया। (यहाँ इड़ा श्रद्धा-पुत्र मानव के सहयोग से सारस्वत-प्रदेश को पुनः बसाने और समृद्ध बनाने के प्रति संकेत कर रही है। पिता ने उस प्रदेश को उजाड़ा था और पुत्र ने फिर बसा कर समृद्ध बनाया था।)

टिप्पणी- पहले छन्द में प्रयुक्त 'वर्षा' शब्द से यह ध्वनि निकलती है कि जिस प्रकार दावाग्नि से जलते वन की अग्नि को वर्षा शान्त कर देती है, उसी प्रकार करुण के कारण श्रद्धा के नेत्रो से टपकते उन आँसुओं ने उजड़े हुए सारस्वत प्रदेश को दुखों से मुक्त कर सुख-शान्ति से भर दिया था। श्रद्धा अपने पुत्र मानव को इड़ा को सौप कर मनु को खोजने चली गई थी और इड़ा ने मानव का सहयोग से ही सारस्वत प्रदेश को पुनः बसाया था और उसके प्रयत्नों से ही वहाँ सुख शान्ति की स्थापान सम्भव हो सकी थी।

M.A HINDI COUR -2 BLOCK-6 FNO.-2 FRONT

' करुण की वर्षा' में रूपकातिशयोक्ति; 'आँसुओं के बरदान बनने' में विरोधाभासः 'ताप' में श्लेषालंकार है।

"खग कुल किलकार रहे थे, कलहंस कर रहे कलख, किन्नरियाँ बनी प्रतिध्वनि लेती थी तानें अभिनव। मनु बैठे ध्यान-निरत थे उस निर्मल मानस-तट में, सुमनों की अजली भर कर श्रद्धा थी खड़ी निकट में।"

शब्दार्थ- खग-कुल-पक्षियों के समूह। किलकार रहे थे-कलरव कर रहे थे। कल-हंस-सुन्दर हंस, साजहंस। अभिनव नई। ध्यान-निरत-ध्यान में डूबे। मानस-तट-मान सरोवर का तट। सुमनों फूलो।

भावार्थ- कवि कहता है- पक्षियों के समूह चह-चह रहे थे और सुन्दर राजहंस मधुर ध्वनि से कूजन कर रहे थे। उस चहचहाहट और कूजन की मधुर ध्वनियाँ पर्वत से टकरा कर ऐसी प्रतिद्वनि उत्पन्न कर रही थी मानो किन्नरियाँ (पर्वतों पर रहने वाली एक विशेष जाति की स्त्रियाँ) नई तानों के साथ गा रही हो।

एसे उस समय वातावरण में मनु मानसरोवर के कट पर ध्यान में डूबे, ध्यान लगाए बैठे थे और श्रद्धा अपनी अंजली में फूल भरे उनके पास खड़ी थी।

" श्रद्धा ने सुमन बिखेर शत-शत मधुपों का गुंजन, भर उठा मनोहर नभ में मनु तन्मय बैठे उन्मन। पहचान लिया था सब ने फिर कैसे अब वे रुकते, वह देव द्वद्वद्युतिमय था फिर क्यों न प्रणति में झुकते।"

शब्दार्थ- शत-सैकडों उन्मन-उदासीन, अप्रभावित। देव-द्वन्द्व-देवतुल्य जोड़ा, श्रद्धा और मनु। धुतिमय-प्रकाशामान, शोभायमान। प्रणति में झुकते-प्रणाम करने के लिए झुकते, प्रणाम करते।

भावार्थ - कवि कहता है.....श्रद्धा ने फूलों को बिखेर दिया। और उसके ऐसा करते ही आकाश में अगणित भ्रमरों के समवेत गुँजन की सी मधुर ध्वनि गूँज उटी। परन्तु मनु उससे अप्रभावित, उदासीन मुद्रा में ध्यान-मग्न बैठे रहे। (यहाँ मनु की स्थिति को स्पष्ट किया गया है।)

उस आगन्तुक यात्री-दल के सभी सदस्यों ने मनु और श्रद्धा को पहचान लिया था, फिर भला वे उनके पास पहुँचने कैसे रुक सकते थे! श्रद्धा और मनु का वह देवतुल्य जोड़ा तेजोमय(प्रकाशमान, शोभायमान) था। अतः वे लोग उन

दोनों को प्रणाम करने के लिए उनके सम्मुख नतमस्तक क्यों न होते। अर्थात् श्रद्धा और मनु के उस तेजोमय रूप से प्रभावित हो, सबने उन्हे झुक कर प्रणाम किया।

"श्रद्धा के मधु-अधरों की छोटी-छोटी रेखायें, रागारुण किरण कला सी विकसी बन स्मिति लेखाएँ। वह कामयनी जगन की मंगल-कामना-अकेली, थी ज्योतिष्मती प्रफुल्लित मानस तट की वन बेली।"

शब्दार्थ- मधु=मधुर। रेखाएँ=मुस्कान की किरणों। रागारूण=अनुराग की लारिमा से लाल विकसीं=विकसित हुई, प्रकाशित हुई,। स्मिति लेखाएँ =मुस्कान की किरणों ज्योतिष्मती=कान्तिमान। बन-बेली=वन की लता।

भावार्थ- मनु के उपर्युक्त सारगर्भित वचनों को सुन कर श्रद्धा मन्द-मन्द सुस्कराने लगी। कवि उसके उसी रूप का वर्णन करता हुआ कह रहा है-श्रद्धा के मधुर अधरों पर मुस्कान की छोटी-छोटी सी रेखाएँ उदय हो उठी। वे रेखाएँ अनुराग की लालिम भरी किरणों की मन्द आभा के समान मुस्कान की रेखाएँ बन कर विकसित हो उठी। भाव यह है कि श्रद्धा की उस मुस्कान में मनु के प्रति अगाध अनुराग व्यक्त हो रहा था।

ऐसी वह कामायनी जगत गी मंगल कामना की अकेली, एकमात्र मूर्ति-सी प्रतीत हो रही थी। अर्थात् श्रद्धा की उस मुस्कान में जगत के कल्याण की अगाध, अनन्य आकांक्षा प्रतिबिंबित हो रही थी। अपनी मुस्कान की आभा से कान्तिमान श्रद्धा मान-सरोवर के तट पर खड़ी ऐसी रमणीय प्रतीत हो रही थी, मानो उस तट पर वन की लता खिले हुए फूलों से भरी सुन्दर और कान्तिमान दिखाई दे रही हो। (यहाँ कवि ने 'श्रद्धा' शब्द का प्रयोग न कर 'कामायनी' शब्द का प्रयोग साभिप्राय किया है। 'कामायनी' का शाब्दिक अर्थ है-काम का अयन अर्थात् काम का आश्रय। इसी कारण उसे 'जगत की मंगल कामना' कहा गया है।)

" वह विश्व-चेतना पुलकित थी पूर्ण-काम की प्रतिमा, जैसे गंभीर महाह्रद हो भरा विमल जल महिमा। जिस मुरली के निस्वन से यह शून्य रागमय होता, वह कामायनी विहँसती अग जग था मुखरित होता ।"

शब्दार्थ- विस्व-चेतना=विराट् चेतना-शक्ति। पुलकित= सोमांचित, आनंदित। पूर्ण काम=पूर्ण सन्तोष, र मारसता। गम्भीर=गहरा ! महाह्रद=विशाल सरोवर।

विमल=निर्मल! जल-महिमा=जल रूपी महिमा। निसवन=स्वर। रागमय=संगीतमय। अग जग=जड़ और चेतन विश्व। मुखरित=गुचित, गतिशील।

भावार्थ- कवि कहती है-उस समय श्रद्धा विराट् विश्व-चेतना के समान पुलकित(आनदित) हो रही थी। अर्थात् उसे देख ऐसा प्रतीत होता था मानो उल्लसित विश्व-चेतना श्रद्धा के रूप में साकार हो उठी हो। वह पूर्ण काम अर्थात् पूर्ण सन्तुष्ट, समारसता की मूर्ति सी लग रही थी। उस समय श्रद्धा ऐसी महिमावान लग रही थी जैसे कोई विशाल सरोवर निर्मल जल से आपूरित महिमावान और सुन्दर दिखाई पड़ता है। सरोवर की महिमा उसमें भरे जल से होती है; जल-सरोवर का कोई महत्व नही होता। उस समय पूर्ण काम की सी सजीव प्रतिमा मुस्कुराती हुई श्रद्धा गम्भीर और महिमावान प्रतीत हो रही थी।

जिस प्रकार मुरली की ध्वनि से आकाश संगीतमय हो उठता है, संगीत के कोमल-मधुर स्वरों से गूँजने लगता है, उसी प्रकार जब कामायनी हँसती थी तो सारा जड़-चेतन-जगत मुखरित, उल्लसित हो उठता था। अर्थात् श्रद्धा की मधुर हँसी सम्पूर्ण जड़-चेतन-जगत में चेतना उत्पन्न कर उसे उल्लास से भर देती थी। सारे विश्व में प्रेम का संगीत गूँजने लगता था।

टिप्पणी - पहले छन्द का विश्लेषण करते हुए श्री नगीनचन्द सहगल ने लिखा है- "प्रसाद जी ने प्रकृति के अधिकतर ऐसे उपमान चुने हैं जो केवल बाहय साम्य ही नही रखते अपितु किसी न.किसी प्रकार के आन्तरिक (भाव) साम्य के भी द्योतक होते है। लोक मंगल एवँ शिव-चेतना से पुलकित श्रद्धा को विमल जल से परिपूर्ण महाह्रद कह कर कवि ने उसके अन्तर्बाढ का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है! चेतना, कामना, गम्भीरता और निर्मलता की रेखाओं द्वारा अंकित श्रद्धा का यह चित्र स्वतःपूर्ण है क्योंकि इसमें चेतना की पुलकन है, कामना की सजीवतः है, ज्ञानन का आगम्भीर्य है, हृदय की पावनता, विशालता, अगाधता तथा सदाशयता है, चरित्र की निर्मलता है, जल की सजीवता-गतिशीलता है और लोक-कल्याणजन्य महिमा है।

"क्षण-भर में सब परिवर्तित अणु अणु थे विश्व-कमल के, पिंगल-पराग-से मचले आद-सुधा-रस छलके। अति मधुर गधबह बहता परिमल बूँदों से सिंचित, सुख-स्पर्श कमल-केसर का कर आया रज से रंचित।।"

शब्दार्थ-परिवर्तित=बदल गये। विश्व कमल=विश्व रूपी कमल। पिंगल पराग=पीला पराग। आनन्द सुधारण=आनन्द रूपी अमृत या मकरनद। गन्धवह=गन्ध को धारण करने वाला पवने। परिमल बंद=सुगन्धित रस की बूँदें। सिंचित=भीगा हुआ। केसर=पराग। रज=पराग। संजित=सुशोभित।

भावार्थ- कवि कहता है -श्रद्धा की उस राग-रंजित मुस्कान के प्रभाव से क्षणा-भर में ही इस विश्वरूपी कमल का अणु-अणु कण-कण जैसे परिवर्तित हो उठा। उसको एक-एक कण पीले पराग से, आनन्द-उल्लास से मचल उठा, तरंकित होने लगा और उस विश्व-रूपी कमल से आनंद का अमृत झलकने लगा। भाव यह है कि सम्पूर्ण जड़-चेतन विश्व का कण-कण आनन्दोल्लास से तरंगित होने लगा उसी प्रकार जैसे कमल का पीला पराग सारे वातावरण को सुगन्धि से भर देता है।

उस समय पराग से गंधित और फूलों के रस से भीगी मधुर वायु चल रही थी। कमल के केसर का सुखद स्पर्श प्राप्त कर पवन स्वयं को पराग की धूल से सुशोभित कर आया था। अर्थात् वह पवन कमल-केसर के समान सुखद स्पर्श की अनुभूति कराने वाला और सुगंधित था। 'केसर' फूल के मदआं में स्थित सीक-से पतले परन्तु कोमल उस भाग के कहते हैं जिस पर पराग के कण लिपटे होते है।)

टिप्पणी- विश्व-कमल' में रूपक; 'पिगल पराग' में रूपकातिशायोक्ति; 'आनन्द सुधारस' में रूपक;और पहले पूरे छन्द में सांगरूपक अलकार है, दूसरे छन्द में मानवीकरण के साथ समासोक्ति अलंकार की व्यंजना है।

" जैसे असंख्य मुकुलो का मादन विकास कर आया, उनके अछूत अधरों का कितना चुंबन भर लाया। रुक-रुक कर कुछ इठलाता जैसे कुछ हो वह भूला, नब कनक-कुसुम-रज धूसर मकरंद-जलद-सा फूला।"

शब्दार्थ- मुकुलों =कलियों। मादन=मोहक, सस्त कर देने वाला। अजुत=जो पहले कभी चूमे न गए है। इटलात=मस्ती से चलता। कनक कुसुम-सज=सुनहले फूलों का पराग। धूसर=रना हुआ, लिपटा हुआ। मकरन्द जलद-सा=मकरन्द अर्थात् पुष्प-रस की बूँहों से भरे बादल के समान। फूला=उमड़ा, इतराता। भावार्थ - कैलास पर, मानसरोवर के तट पर मन्द-मन्द बहते सुगन्धित पवन के सम्बन्ध न कवि आगे कहता है- ऐसा प्रतीत होता था मानो वह पवन अपने

कोमल स्पर्श द्वारा असंख्य कलियों को मस्त कर देने वाली स्थिति तक विकसित करके आया था, उन्हों खिला गाया था। वह पवन इतना सुगन्धि से भर था मानो उस असंख्य कलियों के न चूमे गए अछूत अधरों के न जाने कितने चुम्बन लेखर आया था। अर्थात् इन अगणित चुम्बनों के कारण ही वह इतनी मादक सुगन्धि से भर आया था। (प्रातः कालीन मन्द पवन के स्पर्श से फूलों की कलियाँ खिल उटती है, और उनके खिल है, और उनके खिल जाने पर उनके भीतर भरा पराग पवन के साथ उड़ने लगता है जिससे वातावरण सुगन्धि से भर जात है। 'मादन विकास' से यह अभिप्राय है कि जिस प्रकार वयःसंधि प्राप्त नवोढ़ा नायिका प्रियतम का स्पर्श पाकर रोमांचित हो उठती है और उसके हृदय में काम का स्फुरण होने से यौवन विकसित हो जाता है उसी प्रकार कलियाँ मन्द पवन का स्पर्श पाकर रोमांचित हो यौवन से भर उठी थी, खिल कर फूल बन गई थी। फूल कली के (यौवन) का रूप होती है।

वह पवन कुछ रुक-रुक कर, इठलाता हुआ-सा, मस्ती से भरा हुआ सा इस प्रकार चल रहा था, जैसे कुछ बूल गया हो और चलते-चलते रुक कर उस भूली हुई बात को याद करने लगता हो। वह नवीन पलाश के सुनहले फूलों के पराग से सना सुआ मकरन्द (पुष्प-रस) की बूँदों के जल से भरे बादल के समान उमड़ता, इतराता हुआ चल रहा था।

टिप्पणी - उपर्युक्त दोनों छन्दो में कवि शीतल मन्द-सुगन्ध पवन को एक रसिक प्रेमी नायक के रूप में प्रस्तुत कर रहा है। कविवर बिहारी ने मी अपने एक दोहे में पवन का ऐसा ही रूप अंकित किया है।

'सनित भृंग-घटावली, झरत दान मधु-नीर। मन्द-मन्द आवृत्त चल्यों, कुंजर कुंज-समीर।।'

दोनों छन्दों में मानविकरण के साथ समासोक्ति अलकार है 'मकरन्द जलद सा' में पूर्णोपमा तथा दोनों छन्दो में उत्प्रेक्ष अलंकार का परम्परायुक्त परन्तु रम्य प्रयोग दर्शनीय है

" जसे वनलक्ष्मी ने ही विखराया हो केसर रज, या हेमकूट हिम जल में झलकाता परछाई निज। संसृति के मधुर मिलन के उच्छवास बना कर निज दल, चल पड़े गगन-आँगन में कुछ गाते अभिनव मंगल"

शब्दार्थ- वनलक्ष्मी=वन की देवी। केसर-सज=पराग की धूक। हेमकूट=सोने का पर्वत, सुमेरु पर्वत। हिम जल=बर्फ का जल। परछाई=प्रतिबिम्ब। निज=अपना। संसृति=सृष्टि, संसार। उच्छबास =गहरी साँस। निज दल=अपना समूह। गगन आँगन=आकाश रूपी आँगन। अभिनव मंगल=नये मंगल की।।

भावार्थ - कवि कहता है- पीले पराग से सना वह पवन ऐसा प्रतीत होता था जैसे वन की देवा ने चारो ओर पराग की धूल बिखेर दी हो। अथवा सोने का सुमेरू पर्वत बर्फीले जल में अपना प्रतिबिम्ब झलका रहा हो। (यहाँ पुष्प पराग से भरे हल्क से पीले रंग के मन्द का रूप प्रस्तुत करने के लिए कवि ने अत्यन्त नवीन और मौलिक उपमाओं का छायावादी प्रयोग किया है। दूसरी उत्प्रेक्षा तो बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है। निर्मल, स्वच्छ बातावरण का बर्फीले जल के समान सफेद और प्रकाश से भरा है। उस वातावरण में पवन के साथ उड़ती पीले रंग की फूलों की धूल (पराग) ऐसा मनोरम हश्य उत्पन्न कर रही है जैसे बर्फीले जल से भरे सरोवर में सुमेरू पर्वत का प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा हो। परन्तु यहाँ एक प्रश्न उठ खड़ा होता है कि क्या पराग इतनी अधिक मात्रा में उड़ता है कि पवन का संग पील हो उठे!) ।

मन्द पुन के चलने से मधुर ध्वनि उत्पन्न हो रही थी, जो ऐसी जान पड़ती थी जैसे सृष्टि रूपी नायिका के हृदय से, प्रियतम के साथ मधुर मिलन के अवसार पर निकलने वाले उच्छवास अपना दल बना कर आकाश-रूपी आँगन में कुछ ने मगल-गीत गाते चले जा रहे है। (यहाँ प्रकृति और पुरुष के मधुर-मिलन का रूपक है। प्रिय से मिलन होने पर साँसों की गति, भाववेश के कारण, भिन्न हो उठती है। किसी शुभ अवसर पर स्त्रियाँ झुंड बना कर समवेत-स्वर में मंगलगीत गाती चलती है। इसका अभिप्राय यह है कि उस समय सारा संसार आनन्द से उल्लसित हो रहा था।)

"वल्लरियाँ नृत्य निरत थी, बिखरी सुगंध की लहरे, फिर वेणु संघ से उठ कर मूर्च्छना कहाँ अब ठहरे। गूँजते मधुर नूपुर से मदमाते होकर मधुर, वाणी की वीणाऋध्वनी-सी भर उठी शून्य में झिल कर।"

शब्दार्थ- बल्लरियाँ=लताएँ। नृत्य निरत=नृत्य करने में लीन। वेणुरघ्र=बाँस के छेद। मूर्छना =तान, संगीत में आरोह-अवरोह की सन्धि। नूपुर=घँघुरू, बिछुए। मधुकर-भ्रमर। वाणी=सरस्वती।

भावार्थ- कवी मन्द पवन के व्यापक प्रभाव का वर्णन करते हुए आगे कहता है- पवन के चलने से लताएँ नृत्य करने में लीन थी। अर्थात् मन्द पवन के कारण धीरे-धीरे हिलती लताएँ ऐसी लग रही थी मानो तन्मय हो नाच रही हों। चारो ओर सुगन्धि की लहरें उठ रही थी। ऐसे मादक वातावरण में बाँस के छेदों से निकलने वाला स्वर-लहरी कैसे शान्त रह सकती थी! अर्थात् जब पवन बाँस के छेर्दो में होकर गुजरता था तो उससे बंशी की सी मधुर स्वर लहरी उठने लगती थी।

भौरों मदमस्त होकर नूपुरों की मधुर ध्वनि के समान गुँजार कर रहे थे। उनकी वह गुँजार ऐसी मधुर लग रही थी मानो स्बंयं सरस्वती की वीणा से उठने वाला संगीत ऊपर उठ कर सारे आकाश में छा गया हो अर्थात् भौरों की गुँजार सरस्वती की वीणा से निःसृत होने वाले संगीत के समान मधुर थी।

टिप्पणी - यहाँ कवि कैलास पर्वत पर छाए आनन्द और उल्लास भरे वातावरण का वर्णन कर रहा है। प्रकृति के इस उल्लास के ही समान वहाँ उपस्थित सब लोग असीम आनन्द और उल्लास का अनुभव कर रहे थे।

"उन्मद माधव मलयानिल दौड़े सब गिरते पड़ते, परिमल से चली नहा कर काकली, सुमन थे झड़ते। सिकृडन कौशेय वसन की थी विश्व-सुंदरी तन पर, या मादन मृदुतम कंपन छायी संपूर्ण सूजन पर।"

शब्दार्थ - उन्मद=उन्मत, मस्त। माधव=वसन्त ऋतु। मलनयानिल=मलय-पवन। परिमल=फूलों की सुगन्धि। काकली=कोयल की कूक। कोशेय=रेशमी। वेसन=वश्व। विश्व-सुन्दरी=संसार रूपी सुन्दरी। मादन=मस्त कर देने वाला। मृदुतम=अत्यन्त कोमल। कम्पन=कँपकँपी। सृजन=सुष्टि।

भावार्थ - कवि कहता है - उस समय बसन्त ऋतु में चलने वाले मलय-पवन आदि सब मस्त होकर गिरते पड़ते हुए दौड़ पड़े चलने लगे। अर्थात् जिस प्रकार शराब के नशे में मस्त शराबी गिरता पड़ता हुआ दौड़ने लगता है, उसी प्रकार नाना प्रकार की सुगन्धियों से भरा पवन कमी मन्द और कमी तीन्न गति के साथ चलने लगा। मानो वह भी उस वातावरण की मादकता से प्रभावित हो मदमत्त हो उठा है।

पु-रज और उसकी सुगन्धि से संचित उस कोमल और रेशम का सा स्पर्श-सुख प्रदान करने वाली वायु की तरंगें ऐसी प्रतीत होती थी मानो विश्वरूपी सुन्दरी ने अपने शरीर पर रेशमी साड़ी धारण कर रखी हो और उस साजी में सिकुड़नें पड़ रही हौ। (यहाँ वायु की लहरों का उतार-चढ़ाव ही साज़ी की सिकुड़नों के समान है।) या सम्पूर्ण सृष्टि मस्त कर देने वाली अत्यन्त कोमल कँपकँपी के कारण थरथरा रही हो। अर्थात् सारी सृष्टि उस मादक वाता-वरण से प्रभावित हो अत्यन्त हल्के रूप में कँपकँपा रही हो।

"सुख-सहचर दुःख-विद्षक परिहास पूर्ण कर अभिनय, छिप बैठा था अब निर्भय। ये डाल डाल में मधुमय मृदु मुकुल बने झालर से, रस भार प्रफुल्ल सुमन सभ धीरे-धीरे से बरसे।"

शाब्दार्थ- सहचर-साथी। विदूषक-हास्य-अभि-नेता। परिहासरूर्ण -हँसी-मजाक से भरा। पट पस्त्र। मधुमय-मधुर मकरन्द से भरे। मृदु -कोमल। मुकुल-कलियाँ। प्रफुल्ल खिले हुए। सुमन-फूल।

भावार्थ- नाजक में नायक के दो साथी होते है। - एक उसका अभिन्न मित्र और दूसरा विधूषक। अभिन्न मित्र अन्त तक नायक के साथ रहता है और दूसरा विधूषक। अभिन्न मित्र अन्त तक नायक के साथ रहता है और विदूषक कभी कभी अपने हँसी माजक भरे अभिनय और वार्तालाप द्वारा नायक का मनोसंजन कर रंगमंच से हट जाता है। यहाँ कवि इसी रूपक का निर्माण करता हुआ कह रहे है कि सुख उस विश्व-सुन्दरी का सहचर था और दुख उसका मनोरंजन करन वाला विदूषक। अब सुख उसका साथी बना हुआ था और दुख अपना हँसी-मजाक भरा अभिनय पूरा कर सब की विस्मृति के परदे के पीछे निर्भय छिपा हुआ बैठा था। भाव यह है कि अब वहाँ सर्धत्र सुख का साम्राज्य छाया हुआ था और सब लोग दुख के अस्तित्व तक को भूल गये थे। क्योंकि उस आनन्द-लोक में पहुँच जाने से मनुष्य भौतिक अभावों के कारण उत्पन्न होने वाले दुख के अभाव से सर्वथा मुक्त हो असीम, अकंड आनन्द में डूबे सुख का अनुभाव कर रहे थे। (डा तारकनाथ वाली ने इसका विशलेषण करते हुए लिख है-'दुख को विदूषक इसलिए कहा कि दुख के पश्चात् ही सुख की प्राप्ति होती है। दूसरा करण यह भी है कि बीती हुई दुखपूर्ण घटनाएँ मनुष्य को प्रसन्नता का कारण ही होती है। विदूषक वातावरण की एकरसता गो भग करता है। उसी प्रककार दुख भी जीवन की एकरसता को नष्ट करता है।"

वृक्षों और लताओं की एक-एक डाल(टहनी में सुन्दर सरीली और कोमल कलियोँ झालरों (बन्दनवार) के समान लटकती शोभा दे रही थी। और अपने इस (मधु के भार से झुके हुए सारे खिले फूल धीरे-धीरे फूलों की वर्षा हो रही हो। यहाँ 'रस' शब्द का श्लेषार्थ 'जल' ग्रहण करने से यह अर्थ भी किया जा सकता है कि जस प्रकार जल के भार से लदे हुए बादल धीरे-धीरे बरसते है, उसी प्रकार मधु भार से लदे फूल धीरे-धीरे बरसे रहे थे, टपक रहे थे।

"हिम खडं रश्मि मंडित हो मणि दिप प्रकाश दिखाता, जिनसे समीर उकरा कर अति मधुर मृदंग वजाता। संगीत मनोहर उठता मुरली बजती जीवन की, सकेत कामना बन कर बतलाती दिशा मिलन गी।"

शब्दार्थ - हिम-खड वर्फ के टुकढ़े। रश्मि-मडित-चन्द्रमा की किरणों से शोभित मणि-दिप-मणियों से बना दीपक। समीर-पवन। मृदग-ढोलक जैसा एक बाजा। कामना-ईच्छा। मिलन-मिलने की।

भावार्थ- कवि कहता है कैलास पर्वत के शिखर पर जमी हुई बर्फ के खंडों (टुकड़ो) पर जब चन्द्रमा की किरणें पड़ती थी तो वे इस तरह चमकने लगते थे मानो मणियों से बने हुए दीपक अपना मन्द-मन्द प्रकाश विखीर्ण कर रहे हों। और जब पवन उन बर्फ के खंडों से टकराता था तो उससे मृदंग के बजने का सा मधुर स्वर उत्पन्न होता था। जैसे कोई ताल-स्वर के साथ मृदंग बजा रहा हो। (वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।)

उस मनोहर वातावरण में मानो जीवनरूपी बंशी बज रही थी, जिससे मनोहर संगीत उत्पन्न होता था। अर्थात् वहाँ जीवन मुरली के मधुर संगीत के समान आनन्दमय हो रहा था। कामना अर्थात् इच्छा संकेत का रूप धारण कर मिलन की दिशा की और संकेत कर रही थी। अर्थात् इच्छा जीवन के अन्तिम लक्ष्य पूर्ण आनन्द के मिलन की दिशा की और संकेत कर रही थी कि यही वह स्थान है जहाँ पूर्ण आनन्द की प्राप्ति सम्भव है। सब उस आनन्दपूर्ण मिलन की इच्छा व्यक्त कर रहे थे।

" रश्मियाँ बनीं अप्सरियाँ अंतरिक्ष में नचती थीं, परिमल का कन-कन लेकर निज संगमंच रचती थी। मांसल-सी आज हुई थी हिमवती प्रकृति पाषाणी, उस लास-रास में विह्वल थी हँसती ही कल्याणि।"

शब्दार्थ- रश्मियाँ-किरणों । अन्तरिक्ष-आकाश। परिमल-परागकण, सुगन्धि। रंगमंय-नाटक को अभिनीत करने के लिये बनाया गया मंच। मांसल-सजीव। हिमवती-बर्फ से ढकी। पाषाणी पत्थर के समान कठोर, निर्जीव। लास-लास्य, एक प्रकार का कोमल भावों का सूचक नृत्य। रास-नृत्य।

भावार्थ- कवि कहता है-चन्द्रमा की किरणों अप्सराओं का सा मोहक रूप धारण किए आकाश में नाच रही थी। वे पुष्पों के पराग का एक-एक कण चुन-चुन कर उनसे अपने नृत्य के लिए रंगमंच का निर्माण कर रही थी। अर्थात् अन्तरिक्ष में पवन के साथ उड़ते हुए पराग-कण को ही मानो उन किरणों रूपी अप्सराओं के नृत्य के रंगमंच की रचना कर रहे थे।

कैलास पर्वत पर बर्फ ढकी हुई पत्थर के समान कठोर और निर्जीव प्रकृति मानो आज सजीव सी हो रही थी। वह मंगल-स्वरूप (सब का कल्याण करने वाली) लास्य-नृत्य करने में तम्मय-सी हो हँसती-सी दिखाई पड़ रही थी, अर्थात् प्रकृति लास्य-नृत्य में आत्म-विभेर बनी उल्लसित हो रही थी। यहाँ चाँदनी ही प्रकृति का हास्य है।)

"वह चद्रं किरीट रजत-नग स्पंदित-सा पुरूष पुरातन, देखता मानसी गौरी लहरों का कोमल नर्तन!"

शब्दार्थ- चन्द्र किरीट =चन्द्रमा रूपी मुकुट। रजत=याँदी। नग=पर्वत। स्पन्दित=कम्पित, चँचल। पुरूष पुरातन=परम हम, परम शिव। मानसी=हृदयेश्वरी, मान -सरोबर रूपी। गौरी=पार्वती। नर्तन=नृत्य ।

भावार्थ - कवि कहता है - चन्द्रमा रूपी मुकुट धारण किए चाँदी के समान श्वेत और कान्तिमान कैलास पर्वत सनातन पुरुष अर्थात् परम शिव के समान स्पन्दित हो रहा था । अर्थात् जिस प्रकार परम शिव अखंड आनन्द में भर लास्य नृत्य करने लगते हैं, उसी प्रकार अखंड आनन्द में भर लास्य नृत्य करने लगते हैं, उसी प्रकार कैलास पर्वत भी चतुर्दिक छाए उस अखंड आनन्द में भर सजीव-सा हो रहा था । ऐसा वह कैलास-पर्वत अपनी गोद में स्थित मानसरोवर रूपी पार्वती की लहरों का कोमल नृत्य देख रहा था । हाँ बर्फ से ढके होने के कारण कैलास पर्वत को गोरे रंग वाले शिव के समान माना गया है । शिव की जटाओं के ऊपर चन्द्रमा रहता है, यहाँ कैलास पर्वत के शिखर पर भी चन्द्रमा रहता है, यहाँ कैलास पर्वत के शिखर पर भी चन्द्रमा चमक रहा है । शिव की प्रिया पार्वती

उनकी गोद में स्थित रहती हैं और शिव उनके हावभाव को मुग्ध हो देखते हैं । इसी प्रकार कैलास पर्वत की गोद में मान-सरोवर रूपी उसकी प्रिया स्थित है, जिसकी लहरों के कोमल नृत्य को वह मुग्ध होकर देख रहा है ।)

" प्रतिफलित हुई सब आँखें
उस प्रेम-ज्योति-विमला से,
सब पहचाने से लगते
अपनी ही एक कला से ।"

शब्दार्थ - प्रतिफलित = सफल । धन्य । प्रेम-ज्योति-प्रेम का प्रकाश विकीर्ण करने वाली ज्योति । विमला-निर्मल पवित्र । अपनी ही एक कला अपने हृदय में स्थित प्रकाश ।

भावार्थ - कवि कहता है - कैलास पर्वत पर परम पावन श्रद्धा के मधुर प्रेम के कारण प्रेम का जो निर्मल, अलौकिक प्रकाश विकीर्ण हो रहा था, उसे देख कर सब की आखें सफल, कृतकृत्य हो उठी । अर्थात् उस अद्‌भुत, अलौकिक आनन्द से परिपूर्ण दृश्य को देख सब का जीवन सफल हो गया । वहाँ उपस्थित सभी लोगों को दूसरे सभी लोग, अपने हृदय में व्याप्त प्रेम के प्रकाश के कारण, पहचाने-से, चिर-परिचित से दिखाई पड़ने लगे । अर्थात् पूर्ण समरसता की उस मनः स्थिति में वहाँ उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति को यह अनुभूति हो रही थी कि सब उस एक परब्रह्म के अंश हैं, प्रत्येक के हृदय में उसी का अंश (आत्मा) प्रकाशित हैं ।

टिप्पणी - यहाँ पूर्ण समरसता की स्थिति को स्पष्ट कर रहा है । श्री रामलाल सिंह ने इसका विश्लेषण करते हुए लिखा है- "कामायनी के इन अवतरण में 'अहम' और 'इदम' के पूर्ण समन्वय के साथ-साथ जड़ तथा चेतन प्रकृति के सामरस्य एवं तज्जनित आनन्द का निरूपण है । वस्तुतः प्रेम में शिवत्व तभी आता है जब उसका आधार शरीर नहीं वरन् आत्मा हो जाता है । जब तक मनु के प्रेम का आधार शरीर रहा तब तक उन्हें शिवत्व (मंगल-तत्व) कहीं नहीं मिला। ज्योंही उनके प्रेम का आधार आत्मा हो जाता है, ज्यो ही वे श्रद्धा से आत्मिक रूप से मिलते हैं त्योंही उन्हें शिव का साक्षात् दर्शन चारों ओर होने लगता है । कवि ने यहाँ स्पष्ट बताया है कि प्रेम का सच्चा रूप आत्मिक है, शारीरिक नहीं। उनके प्राप्त करने पर चारों ओर मंगल तथा आनन्द का दर्शन होने लगता है, पुण्य पाप

से, गुण अवगुण से, तथा प्रकाश अन्धकार से मिल कर एक हो जाते हैं, सब पहचाने से लगते हैं तथा मानव चेतना निर्विकार होकर हँसने लगती है ।"

" समरस थे जड़ या चेतन
सुंदर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती
आनंद अखंड घना था ।"

शब्दार्थ - समरस = अभिन्न, एकरूप । साकार = मूर्तिमान । चेतनता = चेतन-शक्ति। विलसती = शोभा देती ।

भावार्थ - कवि कहता है - उस समय जड़ और चेतन अर्थात् जड़, प्रकृति और चेतन मानव सभी अभिन्न, एकरूप हो रहे थे । सौन्दर्य मूर्तिमान (मूर्त) हो गया था । अर्थात् वहाँ सब कुछ सौन्दर्य की एक विराट, साकार सी मूर्ति बन गया था। वहाँ एक ही चेतन-शक्ति सब में विलास कर रही थी, स्थित थी । और अखंड, सघन-आनन्द का साम्राज्य छा रहा था । अर्थात् प्रत्येक अखंड, गहन आनन्द की अनुभूति में डूबा हुआ था ।

टिप्पणी - ' कामायनी' के इस अन्तिम छन्द में प्रसाद जी 'आनन्दवाद' की स्थापना कर रहे हैं । दूसरे शब्दों में इस आनन्दवाद को मोक्ष का पर्याय भी माना जा सकता है । क्योंकि प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार अखंड आनन्दस्वरूप चिति या परम शिव के दर्शन कर साधक जब अखंड आनन्दमय अव्ययरूप को प्राप्त हो जाता है, उसी स्थिति को मोक्ष कहा गया है । परन्तु डा. तारकनाथ बाली को यह सन्देह है कि क्या यह आनन्द की अनुभूति सामाजिक स्तर पर भी सत्य हो सकती है ? वह प्रश्न उठाते हैं "अन्तिम छन्द में प्रसाद जी ने जीवन की उच्चतम अनुभूति को व्यक्त किया है । यह अनुभूति सामरस्य की है जिसमें मनुष्य सारे भेदों तथा विषमताओं से ऊपर उठ जाता है । जीवन की यह परम अनुभूति मनु और श्रद्धा को ही नहीं होती वरन् सारस्व प्रदेश के सारे निवासियों को भी - जो जीवन में पगे हैं - होती है । इस प्रकार प्रसाद जी ने प्राचीन व्यक्तिवादी आदर्श को सामाजिक धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है । लेकिन फिर भी यह सवाल पैदा होता है कि क्या यह व्यक्तिवादी आदर्शात्मक अनुभूति सम्पूर्ण समाज के स्तर पर भी सत्य हो सकती है। क्या यह परम अनुभूति व्यक्ति की साधना के सन्दर्भ में ही सार्थक नही हैं ?"

इस सम्बन्ध में हमारा नम्र निवेदन है कि व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग होता है । इसलिए जो कार्य वैयक्तिक स्तर पर सम्भव है, वह व्यापक सामजिक स्तर पर भी सम्भव हो सकता है । अत्यन्त प्राचीन काल से संसार की महान् आत्माएँ, ऋषि-मुनि, चिन्तक-विचारक आदि वैयक्तिक उदात्त उपलब्धियों का समाजीकरण करने का अथक प्रयत्न करते आए हैं ! इस प्रयत्न में उन्हें थोड़ी-बहुत सफलता भी मिलती आई हैं । कवि जागरूक समाज-द्रष्टा होता है । समाज का कल्याण उसका एकान्त लक्ष्य रहता है । इसी कल्याण-कामना से प्रेरित हो तुलसी ने राम-राज्य की कल्पना की थी और प्रसाद का आनन्दवाद भी इसी मंगलाकांक्षा का आदर्श लक्ष्य है । यदि राम राज्य की कल्पना कभी साकार हो सकेगी तो प्रसाद के आनन्दवाद की समरसतामयी आनन्दानुभूति भी सम्भव हो सकती है । हमारे शुभ, उदात्त वैयक्तिक प्रयास जब आधुनिक राष्ट्रीयकरण के कारण सामाजीकरण का रूप धारण कर लेंगे, तभी प्रसाद की यह उदात्त कल्पना साकार हो उठेगी । इसलिए डा. बाली के उपर्युक्त शंकाशील, निराशावादी दृष्टिकोण से हमारा विरोध है । 'कामायनी' का कवि पलायनवादी निवृत्ति-मार्ग का घोर विरोधी है । उसके अनुसार जीवन के प्रति अडिग आस्था, सतत कर्म, सत्काम और सत्य की ऊपासना द्वारा ही अखंड आनन्द की प्राप्ति सम्भव है । इसी के द्वारा सारी विषमताओं का उन्मूलन और समरसता की स्थापना हो सकती है।

डा. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने 'कामायनी के इसी महान् सन्देश को हृदयंगम करते हुए यथार्थ ही लिखा है "....प्रसाद जी ने जिस तरह 'कायानी' पात्र को 'हृदय की अनुकृति बाह्य उदार', 'हृदय की बात', एवं इस झुलसते विश्व की 'कुसुम ऋतु रात' कहा है, उसी तरह सम्पूर्ण 'कामायनी' काव्य को हम भी प्रसाद जी के हृदय की अनुकृति बाह्य उदार उनके हृदय की बात, तथा विषमता की ज्वाला से झुलसते इस विश्व को 'कुसुम ऋतु रात' का सा सुख प्रदान करने वाला महाकाव्य कह सकते हैं, जो अपने समन्वयवाद, समरसता, आनन्दवाद आदि के द्वारा समस्त विश्व को यह महान् सन्देश दे रहा है कि यदि मानव मन, बुद्धि और हृदय में उचित सन्तुलन स्थापित करके पारस्परिक भेद-भाव को भुलाता हुआ प्रवृत्ति और निवृत्ति एवं भौतिकता और आध्यात्मिकता से समन्वित जीवन व्यतीत एवं भौतिकता और आध्यात्मिकता से समन्वित जीवन व्यतीत करेगा और बुद्धि के सदुपयोग द्वारा निरन्तर सत्कर्मों में संलग्न रहेगा, तो उसे सारा विश्व एक नीड़ के तुल्य प्रतीत होगा और वह स्वयं अखंड आनन्द का अनुभव करता हुआ जगती के

अन्य प्राणियों को भी सुखी एवं आनन्दमय बनाने में सफल सिद्ध होगा । अतः 'कामायनी' महाकाव्य इस निराश, भय-त्रस्त, भ्रमित एव 'चिर दग्ध-दुखी वसुधा' को शान्ति और सुख की आशा बँधाता हुआ अखंड आनन्द प्राप्ति का मंगलमय सन्देश दे रहा है ।"

20.4 इड़ा का चरित्र-चित्रण

इड़ा का परिचय - श्रद्धा के पश्चात् 'कामायनी' की प्रमुख नारी-पात्रा है इड़ा। जैसी कि स्वयं प्रसाद जी ने (कामायनी : आमुख) स्पष्ट कर दिया है, "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रुपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है ।" ..... इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखने हुए सांकेतिक अर्थ को भी अभिव्यक्ति करें और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है । निःसंदेह कामायनी की इड़ा में ऐतिहासिक और सांकेतिक दोनों का ही मिश्रण है ।

निघण्टु (1/1/1) और अष्टाध्यायी (संधि प्रकाश) के अनुसार इड़ा अथवा इला शब्द एक ही धातु से व्युत्पन्न हैं । आचार्य पाणिनि भी 'इल प्रेरणें' कहकर इसी मत का समर्थन करते हैं। सामान्यतः डा. वेदज्ञ आर्य (कामायनी की पारिभाषिक शब्दावली) के मतानुसार 'इड़ा' के चार अर्थ हैं - पृथ्वी, वाणी, अन्न और गौ । वैदिक साहित्य में इड़ा का प्रयोग सरस्वती और भारती के साथ-साथ 'देवी-रुप में किया गया है । तैत्तरीय उपनिषद् मे उसको 'धृतपदी', 'मानवी', 'मैत्रावरुणी' और 'यज्ञ-तत्व-प्रकाशिनी देवी' कहा गया है तो ऐतरेय ब्राह्मण में 'पशु' और 'अन्न'।

हिन्दी में 'इड़ा' का अंकन सर्वप्रथम जयशंकर प्रसाद जी ने ही किया है जिन्होंने इसका ऐतिहासिक आधार स्पष्ट करते हुए कहा है, "इड़ा के सम्बन्ध में शतपथ में कहा गया है कि उसकी उत्पत्ति या पुष्टि पाक यज्ञ से हुई । ..... ऋग्वेद में..... यह प्रजापति मनु की पथप्रदर्शिका, मनुष्यों का शासन करने वाली कही गई है । ..... लौकिक संस्कृत में इड़ा शब्द पृथ्वी अर्थात् बुद्धि, वाणी आदि का पर्यायवाची है । ..... इस इड़ा या वाक् के साथ मनु या मन के एक और विवाद का भी शतपथ में उल्लेख मिलता है .....इड़ा को मेघसंवाहिनी नाड़ी भी कहा गया है । इड़ा देवताओं की स्वसा थी. मनुष्यों को चेतना प्रदान करने वाली थी । इसलिये यज्ञों में इड़ा कम

होता है । यह इड़ा का बुद्धिवाद श्रद्धा और मनु के बीच व्यवधान बनाने में सहायक होता हैं ।" इन्हीं सब के आधार पर कामायनी की इड़ा की सृष्टि हुई है ।

'इड़ा' का भाषा-वैज्ञानिक आधार भी है । प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् मैक्समूलर और ग्रिम ने इसका भाषावैज्ञानिक विवेचन करके औचित्य सिद्ध किया है । मैक्समूलर (लैक्चर्स आन दी सांइस आफ लैगुएंज) के मतानुसार 'इड़ा' शब्द की उत्पत्ति 'अर' शब्द और उसकी मूल संस्कृत-धातु 'ऋ' से हुयी है जिसका अर्थ प्राचीन काल में 'हल चलाने की क्रिया' था । ग्रीक भाषा का 'एरा', संस्कृत का 'इरा' अथवा 'इड़ा' प्राचीन जर्मन का 'ऐरो' तथा गाथलिक भाषा के 'इरे' और 'इरिओन' आदि शब्द इसी वर्ग और अर्थ के द्योतक हैं । अंग्रेजी का 'अर्थ, (earth), गाथिक का 'एर्था' (Airtha) और ऐंग्लो सेक्सन का 'इओर्था' (eortha) भी मूलतः ऐसे ही शब्द हैं । ग्रिम महोदय की सूचनानुसार, आगे चलकर इड़ा को 'कला की देवी' भी कहा गया ।

कामायनीकार संभवतः इड़ा के इन सभी रुपों-अर्थों से परिचित था ! प्रमाण ? उसने 'कामायनी' में इड़ा का चरित्र-चित्रण इसी आधार पर किया है और इड़ा के इस ऐतिहासिक रुप को पूर्णतया सुरक्षित भी रखा है यद्यपि "..... कहीं कहीं थोड़ी बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार" वह छोड़ नहीं सका है ।

कामायनी की कथा के अनुसार इड़ा ध्वस्त सारस्वत-प्रदेश की शासिका है । श्रद्धाविहीन मनु से उसकी भेंट सरस्वती-तट पर होती है जहाँ वह मनु को कर्म करने के लिए प्रेरित करती है । इड़ा की सलाह पर मनु सारस्वत प्रदेश का नव-निर्माण करते हैं, बुद्धिवाद का पथ ग्रहण करते हैं और स्वभावतः ही अधिकार-भावना से भर जाते हैं । परिणाम होता है मनु का बलात् इड़ा अधिकार करने का असफल प्रयास और इड़ा-प्रजा का विप्लव जिसमें मनु मरणासन्न हो जाते हैं । तभी श्रद्धा उनको अपने साथ कैलाश-यात्रा पर ले जाती है जहाँ कालान्तर में इड़ा भी मनु-पुत्र को लेकर आ पहुंचती है । वह मनु-श्रद्धा से क्षमा याचना करती है और श्रद्धामय हो जाती है । 'कामायनी' में वर्णित इड़ा की इस लघुकथा में प्रसाद जी ने इड़ा का बड़ा मार्मिक चित्रांकन किया है जिसकी प्रमुख चारित्रिक विशेषतायें इस प्रकार हैं -

20.5 इड़ा की चारित्रिक विशेषतायें -

20.5.1 अनुपम सौन्दर्य - इड़ा का सौन्दर्य अनुपम है । अपने प्रथम अवतरण में ही वह इस अनुपम सौन्दर्य से मनु (और साथ ही साथ पाठक) का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेती है । निःसन्देह उसका यह सौन्दय अन्तर्बाह्म दोनों ही प्रकार से अद्वितीय है जैसा कि निम्न उदाहरणों से भी स्पष्ट होता है -

अ) 'बिखरी अलकें ज्यों तर्कजाल,
वह विश्व मुकुट सा उज्जवलतम शशिखड सदृश था स्पष्ट भाल ।
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल,
गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान ।
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान-ज्ञान'

x x x

ब) नासिका नुकीली के पतले पुट फड़क रहे स्मित अमोल" आशावादिता - इड़ा पूर्णतया आशावादी है । निराशा, अवसाद, दुःख या अतीत-स्मृति का क्लेश उसको पसंद नहीं, जैसा कि मनु को समझाते हुये वह स्वयं कर देती है । प्रलय से ध्वस्त हुए सारस्वत प्रदेश में उसका एकाकी होकर पड़े रहने का कारण भी, स्वयं उसी के शब्दों में, उसका यही आशावाद है -

"भौतिक हलचल से यह चंचल हो उठा देश था मेरा ।
इसमें अब तक हूं पड़ी इसी आशा से आये दिन मेरा ।"

20.5.2 वाक्पटुता - इड़ा वाक्पटुता से परिपूर्ण है । मनु से प्रथम भेंट में ही अपना परिचय, स्थिति और इतिहास बताना, मनु-स्थिति पर सहानुभूति प्रकट करना और बातों ही बातों में मनु को अपनी इच्छानुसार कर्मठ बना देना आदि कार्य उसके इसी गुण के परिचायक हैं । निःसन्देह इसमें मानो आधुनिक-युगीन नारी की वाक्शक्ति और संकोचहीनता ही साकार हो उठी है । "प्रतिभा प्रसन्न मुख सहज खोल", "शनि का सुदूर वह नील लोक" तथा "हाँ तुम ही हो अपने सहाय" आदि इड़ा सर्ग के पद इस गुण के कुछ साक्षी हैं ।

20.5.3 जनप्रिय-साम्राज्ञी - इड़ा सारस्वत प्रदेश की शासिका है । ध्वस्त सारस्वत के पुनर्निर्माण की चिंता यदि उसकी जनप्रियता की परिचायक है तो मनु के विरोध और इड़ा की सहानुभूति में इड़ा-प्रजा का विद्रोह करना उसके जन-आदर-भाव के सूचक हैं ।

उदाहरण देखिये - "और इड़ा पर यह क्या अत्याचार किया है ?
इसलिये तू हम सबके बल यहाँ जिया है ?
आज बंदिनी मेरी रानी इड़ा यहाँ है ?
ओ यायावर ! अब तेरा निस्तार कहाँ है ?

20.5.4 व्यवहार-कुशल - इड़ा की व्यवहार कुशलता ग्रन्थ में आद्योपांत देखी जा सकती है । प्रारम्भ में ही मनु को देख अपने देशोत्थान के लिये प्रवृत्त करना, अपने राजमहल में मनु को लाना, मनु के वासनाग्रस्त प्रयत्नों को देख मनु को समझाते रहना और अपने को बचाये रखना, श्रद्धा की आवाज पर उसको मनु के पास लाना, मानव को अपने पास रख लेना तथा अन्त में कैलाश-यात्रा करके श्रद्धा के सम्मुख पश्चात्ताप करना आदि इड़ा के सभी कार्य उसके इसी व्यवहार-कौशल के परिचायक हैं ।

20.5.5 शक्तिशाली नारी - इड़ा का यह गुण सबसे अधिक मात्रा में प्रतिफलित हुआ है 'संघर्ष' सर्ग में जबकि उह मनु से अपनी रक्षा करती है । अपनी नारीसुलभ शक्ति से ही वह (श्रद्धा की भाँति) न तो आत्म-समर्पण करती है, न लज्जानत होती है और न कल्पनाओं में डूबती है । वह तो अपने को मनु के चंगुल में पाकर भी द्वार की ओर पग बढ़ाती है, द्वार टूटने और प्रजा-विद्रोहियों के आने पर शांत रहती है, यहाँ तक कि युद्ध-रत मनु और किलात-आकुलि को रोकने का पूरा-पूरा प्रयास करती है ।

20.5.6 श्रद्धामयी - युद्ध को देख इड़ा पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है । वह अपने एकाँगी रुप को समझ जाती है और श्रद्धा में विश्वास करने लगती है। फलतः लम्बी कैलाश-आत्रा पर जाते हुये श्रद्धा-पुत्र मानव को पुत्रवत् अपने

पास रखती है, और अन्त में स्वयं भी कैलाश पर पहुंच श्रद्धा के सम्मुख अपनी पराजय स्वीकार करती है ।

"था इड़ा शीश चरणों पर
वह पुलक-भरी गद्‌गद स्वर-
बोली - "मैं धन्य हुयी हूं
जो यहाँ भूलकर आयी
हे देवि ! तुम्हारी ममता
बस मुझे खींचती लायी
भगवती ! समझी मैं ! सचमुच
कुभ भी न समझ थी मुझको"

20.5.7 रूपकतत्व - इड़ा मात्र व्यक्तिगत चरित्र नहीं है वरन् उसमें तो नाना रुपकों का समावेश है । यहाँ तो वह बुद्धि अथवा बुद्धिवाद की प्रतीक है और भौतिकवाद का भी प्रतिनिधित्व करती है । श्री सुधाकर पाण्डे (प्रसाद की कवितायें) का यह कथन सत्य है, "इड़ा बुद्धिवादी सत्ता पर विश्वास करने वाली बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी के रुप में कामायनी में स्थित है ।" यह भी कहा गया है (शिवदान सिंह चौहानः काव्य-धारा) कि "इड़ा आधुनिक पूँजीवादी समाज के वर्ग-भेद और शोषण की मान्यताओं पर आधारित बुद्धि-तत्व की प्रतीक है ।"

20.6 निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'कामायनी' में इड़ा के ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक और रुपकात्मक तीनों रुप सुरक्षित हैं । यहाँ वह प्रतीक तो है ही, एक सजीव नारी भी है । शास्त्रीय दृष्टि से वह सहनायिका है । कथा को गतिशील बनाने में उसका पूरा-पूरा सहयोग है । कवि की नारीप्रियता उसके चरित्र में भी पूरी-पूरी रमी है । निष्कर्ष-स्वरुप श्री सुधाकर पाण्डे के शब्दों में ".....वह बुद्धिवादिनी होते हुए भी लोक-शुभाकांक्षिणी, नव निर्माणमयी एवं समय-समय पर अनुभव के परिणामों का अपने चरित्र में संयोजन कर

जीवन कोविकासमय बनाने के लिये विवेकपूर्वक प्रयत्नशील दीखती है । यहाँ तक कि उसके चरित्र पर श्रद्धा के गुण-धर्म का भी प्रभाव श्रद्धा की सफलता देखकर आ जाता है । निःसन्देह इड़ा एक सफल चित्रकार की सफल तूलिका से अंकित किया गया एक सफल नारी-चित्र है ।"

20.7 बोध प्रश्न

1 आनंद सर्ग की कथा वस्तु समझातेहुए इड़ा का चरित्र चित्रण प्रस्तुत कीजिए।

2 आनंद सर्ग की विशेषताओं की समीक्षा कीजिए।

3 इड़ा का चरित्र चित्रण कीजिए।

20.8 नमूने का उत्तर

1 आनंद सर्ग की कथा वस्तु समझातेहुए इड़ा का चरित्र चित्रण प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर - इड़ा और मानव ने सारस्वत नगर की उचित रूप में शासनव्यवस्था की। नियमों को ऐसा सुव्यवस्थित एवं लोक हितकर बनाया, जिससे वहाँ की जनता धन-धान्य, वैभव एवं सुख-समृद्धि से परिपूर्ण हो उठी। एक दिन बालकों, युवक,-युवतियों का दल इड़ा तथा मानव के साथ श्रद्धा तथा मनु के दर्शन के लिए कैलाश पर्वत की ओर चल दिया। सारस्वत नगर से यात्रियों का यह दल आगे बढ़ता हुआ मार्ग में पर्वतीय तथा नदी के तटवर्ती प्रान्तों से अग्रसर हो रहा था। उस दल में धर्म के प्रतिनिधि के रूप में एक वृषभ भी था, जो मंथर गति से आगे बढ़ रहा था। उसके साथ बंधा हुआ घंटा उसकी मंद चाल के अनुरूप नाद कर रहा था। उस वृषभ के ऊपर सोम-लताएँ लदी हुई थीं। कुमार ने उस वृषभ की रस्सी अपने बाएँ हाथ में पकड़ी हुई थी और दाहिने हाथ में त्रिशूल धारण कर रहा था। इस प्रकार वृषभ के एक ओर तो कुमार चल रहा था तो दूसरी ओर काषाय वस्त्र धारण कर शान्त भाव से इड़ा चल रही थी। पीछे-पीछे [illegible]नक खेलते-कूदते एवं किलकारियाँ मारते हुए चल रहे थे। उनके साथ-साथ युवक मनो[illegible]नोद करते हुए तथा मंगलगीत सुकोमल स्वर में गाती हुई युवतियाँ-महिलााएँ - सभी चल रहे थे। सभी लोग अपना सामान चमरी मृगों

पर लादे हुए थे। कुछ चमरी मृगों पर बालक भी आसीन थे। छोटे-छोटे बच्चे अपनी माताओं की अँगुली पकड़कर चल रहे थे। सभी छोटे-छोटे बच्चे अपनी यात्रा के विषय में बहुत ही जिज्ञासु थे। बाल-स्वभाव के अनुसार एक बच्चा अपनी माँ से पूछने लगा कि माँ तुम तो कह रही थीं कि अब थोड़ी ही दूर चलना है - इतनी दूर आ गए तुम हो कि आगे कि ओर बराबर बड़ती ही जा रही हो - अभी वह तीर्थ-स्थान न जाने कितनी दूर है। वह बालक इड़ा के पास पहुँचकर उससे तीर्थ-स्थान के विषय में जानने के लिए हठ करने लगा। इड़ा ने उस बालक को बतलाया कि वह स्थान परम पवित्र है - वह तपोभूमि है। इड़ा ने आगे बतलाया कि एक दिन एक साधु-मनीषी अपनी पत्नी के साथ संसार की व्यथा-वेदनाओं से विकल होकर परम शान्ति की खोज में चल आया था। उसके हृदय में व्याप्त संताप के फलस्वरूप समूचा वन-प्रान्त जल उठा था। उस मनस्वी की पत्नी के प्रयत्न से सारा वन हरा-भरा हो गया। सर्वत्र हरियाली छा गई। सर्वत्र प्रसन्नता बिखर उठी। तभी से वे दोनों सांसारिक जनों की सेवा करके उन्हें सुख-शान्ति देते रहते हैं। वहीं कामनाओं की पूर्ति करने वाला एक सुन्दर मानसरोवर है। उस मानसरोवर के जल पान से प्राणी सुख-शान्ति प्राप्त करता है। बालक द्वारा बृषभ के विषय में कुतूहल जाग्रत होने पर इड़ा ने बतलाया कि हम अपने साथ इस वृषभ को इसलिए ले जा रहे हैं कि वहाँ उसे हम पूर्णतया स्वच्छन्द कर देंगे। पद-यात्रा से हमारे जीवन के अभावों की पूर्ति हो जायेगी। अब वे सभी एक समतल घाटी पर पहुँच गए। उतार अधिक होने के कारण आगे बढ़ने में सभी ने सावधानी से काम लिया। उस समतल घाटी में सर्वत्र हरीतिमा छाई हुई थी। पेड़-पौधे सभी सुन्दर दिखलाई दे रहे थे, सामने उन्हें हिमाच्छादित हिमालय पर्वत दिखलाई दे रहा था। आगे बढ़कर उन्होंने सुरम्य वन तथा सरोवर देखा। उस समय संध्या हो रही थी। उस संध्याकाल की छटा में कैलाश पर्वत ऐसा दिखलाई दे रहा था मानो वह किसी योगी के रूप में समाधि धारण किए हुए आसीन हो। पक्षियों का कलनिनाद वहाँ पर उस समय व्याप्त हो रहा था। उसी मानसरोवर के समीप मनु ध्यान में लीन थे। उन्हीं के निकट उनकी पत्नी श्रद्धा अपनी अंजलि में पुष्प लेकर खड़ी हुई थी। श्रद्धा ने मनु के चरणों में अपनी पुष्पांजलि समर्पित कर दी, जिससे आकाश में भौरों की सुमधुर गुंजार कर्णगोचर हो रही थी। अभी तक मनु की ध्यानावस्था भंग नहीं हुई थी। यात्रियों के दल ने श्रद्धा तथा मनु-दोनों को पहचान लिया और उनके

चरणों में नतशिर हो गए। इतनी ही देर में इड़ा तथा कुमार भी बृषभ को साथ में लिए हुए वहाँ पहुँच गए। कुमार ने अपनी माता श्रद्धा को देखा और उसकी गोद में बैठ गया। इड़ा श्रद्धा के पुनीत चरणों में नतमस्तक हो गई। इड़ा ने कहा कि मेरा जीवन आज धन्य हो गया। तुम्हारी ममता मुझे यहाँ तक खींच लाई। मैं अपने जीवन में आज तक भूल में ही रही और दूसरों को भी भूलावे में रखा था। सारस्वत नगर की समस्त प्रजा स्वजनों के रूप में है। इसी आत्मीयता के कारण अब एक परिवार के रूप में सभी सुख-शान्ति से रह रहे हैं। अब उनमें किसी प्रकार का कलहच्छेद नहीं रह गया है। आज हम सभी एक दल के रूप में यात्रा करने के हेतु यहाँ आए हैं ताकि हमारे समस्त पाप-कलुष पूर्ण रूप से दूर हो सकें मनु ने ध्यान-स्मतित नेत्रों को खोला। मनु ने मन्द स्मितिपूर्वक कैलाश पर्वत की ओर संकेत करते हुए कहा कि यहाँ अपने-पराये का कोई भेद नहीं है। सब एक हैं - तुम सब मेरे अवयवों के रूप में हो। यहाँ न कोई संतप्त है और न कोई पापाचारी सभी समान हैं। यह समूचा विश्व उसी चिति शक्ति का विराट् शरीर है, यह सारा संसार सुख-दुःख से युक्त होते हुए भी सबके दुःख-सुख में हाथ बंटाना चाहिए - यही तो प्राणियों का वास्तविक स्वरूप है। मनु की बातों सुनकर श्रद्धा के मुखमण्डल पर स्मिति की लहर दौड़ा गई, जिससे वहां दिव्य प्रकाश फैल गया। मधुर ध्वनियाँ गूँजने लगीं। सुगंध समीर बहने लगा। सम्पूर्ण वातावरण सुखमय एवं सुगंधिमय हो उठा। पुष्पों का पराग बिखरने लगा। राकापति की शुभ्र किरणों नृत्य करती हुई दिखलाई देने लगीं। हिमालय पर्वत चंन्द्रमा को मुकुट रूप में धारण किए सुशोभित हो रहा था। सभी लोग वहाँ अभिन्नता की भावना से युक्त थे। जड़ और चेतन में कोई भी भेदभाव नहीं रह गया था। सामरस्य की भावना से सभी पुलकित हो उठे। सभी अखण्ड आनन्द की अनुभूति करने लगे।

आनन्द सर्ग में कवि प्रसाद ने जीवन के चरम लक्ष्य आनन्द को सुनिरूपित किया है, तद्नुकूल इस सर्ग का नामकरण भी किया है। उन्होंने यह भी बतलाया है कि सेवा, दया, प्रेम, त्याग एवं औदार्य आदि सुन्दर वृत्तियों के अवलंबन से ही मानव जीवन सुखद होकर निखर सकता है। अमंद प्रतीति होने पर ही जीवन में सामरस्यपूर्ण वातावरण की सुमधुर सृष्टि हो सकती है। तभी बड़े-छोटे, जड़ तथा चेतन का भेदभाव मिट जाता है- तभी अखण्ड आनन्द की प्राप्ति की जा सकती है। सन्ध्या के वर्णन में कवि ने छायावादी शैली का प्रयोग

किया है, जो अपने में नवीन है। इसके अतिरिक्त लाक्षणिक, प्रतीकात्मक एवं व्यंजनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। कवि द्वारा प्रस्तुत बिम्बविधान मनोहर एवं प्रभावोत्पादक है। उनके विचारों पर प्रत्तयभिज्ञादर्शनम् का प्रभाव स्पष्टतः दिखलाई देता है। यहाँ दर्शनिक विचारों की शुष्कता को अपनी काव्य-प्रतिभा द्वारा सरस एवं प्रभावोत्पादक बनाने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

इड़ा का परिचय - श्रद्धा के पश्चात् 'कामायनी' की प्रमुख नारी-पात्रा है इड़ा। जैसी कि स्वयं प्रसाद जी ने (कामायनी : आमुख) स्पष्ट कर दिया है, "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रुपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है ।" ..... इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखने हुए सांकेतिक अर्थ को भी अभिव्यक्ति करें और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है । निःसंदेह कामायनी की इड़ा में ऐतिहासिक और सांकेतिक दोनों का ही मिश्रण है ।

निघण्टु (1/1/1) और अष्टाध्यायी (संधि प्रकाश) के अनुसार इड़ा अथवा इला शब्द एक ही धातु से व्युत्पन्न हैं । आचार्य पाणिनि भी 'इल प्रेरणें' कहकर इसी मत का समर्थन करते हैं। सामान्यतः डा. वेदज्ञ आर्य (कामायनी की पारिभाषिक शब्दावली) के मतानुसार 'इड़ा' के चार अर्थ हैं - पृथ्वी, वाणी, अन्न और गौ । वैदिक साहित्य में इड़ा का प्रयोग सरस्वती और भारती के साथ-साथ 'देवी-रुप में किया गया है । तैत्तरीय उपनिषद् में उसको 'धृतपदी', 'मानवी', 'मैत्रावरुणी' और 'यज्ञ-तत्व-प्रकाशिनी देवी' कहा गया है तो ऐतरेय ब्राह्मण में 'पशु' और 'अन्न'।

हिन्दी में 'इड़ा' का अंकन सर्वप्रथम जयशंकर प्रसाद जी ने ही किया है जिन्होंने इसका ऐतिहासिक आधार स्पष्ट करते हुए कहा है, "इड़ा के सम्बन्ध में शतपथ में कहा गया है कि उसकी उत्पत्ति या पुष्टि पाक यज्ञ से हुई । ..... ऋग्वेद में..... यह प्रजापति मनु की पथप्रदर्शिका, मनुष्यों का शासन करने वाली कही गई है । .....लौकिक संस्कृत में इड़ा शब्द पृथ्वी अर्थात् बुद्धि, वाणी आदि का पर्यायवाची है । ..... इस इड़ा या वाक् के साथ मनु या मन के एक और विवाद का भी शतपथ में उल्लेख मिलता है .....इड़ा को मेघसंवाहिनी नाड़ी भी कहा गया है । इड़ा देवताओं की सेना थी, मनुष्यों को चेतना प्रदान करने वाली थी इसलिये यज्ञों में इड़ा का

होता है । यह इड़ा का बुद्धिवाद श्रद्धा और मनु के बीच व्यवधान बनाने में सहायक होता हैं ।" इन्हीं सब के आधार पर कामायनी की इड़ा की सृष्टि हुई है ।

'इड़ा' का भाषा - वैज्ञानिक आधार भी है । प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् मैक्समूलर और ग्रिम ने इसका भाषावैज्ञानिक विवेचन करके औचित्य सिद्ध किया है । मैक्समूलर (लैक्चर्स आन दी सांइस आफ लैगुएंज) के मतानुसार 'इड़ा' शब्द की उत्पत्ति 'अर' शब्द और उसकी मूल संस्कृत-धातु 'ऋ' से हुयी है जिसका अर्थ प्राचीन काल में 'हल चलाने की क्रिया' था । ग्रीक भाषा का 'एरा', संस्कृत का 'इरा' अथवा 'इड़ा' प्राचीन जर्मन का 'ऐरो' तथा गाथलिक भाषा के 'इरे' और 'इरिओन' आदि शब्द इसी वर्ग और अर्थ के द्योतक हैं । अंग्रेजी का 'अर्थ, (earth), गाथिक का 'एर्था' (Airtha) और ऐंग्लो सेक्सन का 'इओर्था' (eortha) भी मूलतः ऐसे ही शब्द हैं । ग्रिम महोदय की सूचनानुसार, आगे चलकर इड़ा को 'कला की देवी' भी कहा गया ।

कामायनीकार संभवतः इड़ा के इन सभी रुपों-अर्थों से परिचित था । प्रमाण? उसने 'कामायनी' में इड़ा का चरित्र-चित्रण इसी आधार पर किया है और इड़ा के इस ऐतिहासिक रुप को पूर्णतया सुरक्षित भी रखा है यद्यपि "..... कहीं कहीं थोड़ी बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार" वह छोड़ नहीं सका है ।

कामायनी की कथा के अनुसार इड़ा ध्वस्त सारस्वत-प्रदेश की शासिका है । श्रद्धाविहीन मनु से उसकी भेंट सरस्वती-तट पर होती है जहाँ वह मनु को कर्म करने के लिए प्रेरित करती है । इड़ा की सलाह पर मनु सारस्वत प्रदेश का नव-निर्माण करते हैं, बुद्धिवाद का पथ ग्रहण करते हैं और स्वभावतः ही अधिकार-भावना से भर जाते हैं । परिणाम होता है मनु का बलात् इड़ा अधिकार करने का असफल प्रयास और इड़ा-प्रजा का विप्लव जिसमें मनु मरणासन्न हो जाते हैं । तभी श्रद्धा उनको अपने साथ कैलाश-यात्रा पर ले जाती है जहाँ कालान्तर में इड़ा भी मनु-पुत्र को लेकर आ पहुंचती है । वह मनु-श्रद्धा से क्षमा याचना करती है और श्रद्धामय हो जाती है । 'कामायनी' में वर्णित इड़ा की इस लघुकथा में प्रसाद जी ने इड़ा का बड़ा मार्मिक चित्रांकन किया है जिसकी प्रमुख चारित्रिक विशेषतायें इस प्रकार हैं -

इड़ा की चारित्रिक विशेषतायें -

अनुपम सौन्दर्य - इड़ा का सौन्दर्य अनुपम है । अपने प्रथम अवतरण में ही वह इस अनुपम सौन्दर्य से मनु (और साथ ही साथ पाठक) का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेती है । निःसन्देह उसका यह सौन्दर्य अन्तर्बाह्य दोनों ही प्रकार से अद्वितीय है जैसा कि निम्न उदाहरणों से भी स्पष्ट होता है -

अ) 'बिखरी अलकें ज्यों तर्कजाल,
वह विश्व मुकुट सा उज्जवलतम शशिखड सदृश था स्पष्ट भाल ।
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल,
गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान ।
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान-ज्ञान'

x x x

ब) नासिका नुकीली के पतले पुट फड़क रहे स्मित अमोल" आशावादिता - इड़ा पूर्णतया आशावादी है । निराशा, अवसाद, दुःख या अतीत-स्मृति का क्लेश उसको पसंद नहीं, जैसा कि मनु को समझाते हुये वह स्वयं कर देती है । प्रलय से ध्वस्त हुए सारस्वत प्रदेश में उसका एकाकी होकर पड़े रहने का कारण भी, स्वयं उसी के शब्दों में, उसका यही आशावाद है -

"भौतिक हलचल से यह चंचल हो उठा देश था मेरा ।
इसमें अब तक हूं पड़ी इसी आशा से आये दिन मेरा ।"

वाक्पटुता - इड़ा वाक्पटुता से परिपूर्ण है । मनु से प्रथम भेंट में ही अपना परिचय, स्थिति और इतिहास बताना, मनु-स्थिति पर सहानुभूति प्रकट करना और बातों ही बातों में मनु को अपनी इच्छानुसार कर्मठ बना देना आदि कार्य उसके इसी गुण के परिचायक हैं । निःसन्देह इसमें मानो आधुनिक-युगीन नारी की वाक्शक्ति और संकोचहीनता ही साकार हो उठी है । "प्रतिभा प्रसन्न मुख सहज खोल", "शनि का सुदूर वह नील लोक" तथा "हाँ तुम ही हो अपने सहाय" आदि इड़ा सर्ग के पद इस गुण के कुछ साक्षी हैं ।

जनप्रिय-साम्राज्ञी - इड़ा सारस्वत प्रदेश की शासिका है । ध्वस्त सारस्वत के पुनर्निर्माण की चिंता यदि उसकी जनप्रियता की परिचायक है तो मनु के विरोध और इड़ा की सहानुभूति में इड़ा-प्रजा का विद्रोह करना उसके जन-आदर-भाव के सूचक हैं ।

उदाहरण देखिये - "और इड़ा पर यह क्या अत्याचार किया है ?
इसलिये तू हम सबके बल यहाँ जिया है ?
आज बंदिनी मेरी रानी इड़ा यहाँ है ?
ओ यायावर ! अब तेरा निस्तार कहाँ है ?

व्यवहार-कुशल - इड़ा की व्यवहार कुशलता ग्रन्थ में आद्योपांत देखी जा सकती है । प्रारम्भ में ही मनु को देख अपने देशोत्थान के लिये प्रवृत्त करना, अपने राजमहल में मनु को लाना, मनु के वासनाग्रस्त प्रयत्नों को देख मनु को समझाते रहना और अपने को बचाये रखना, श्रद्धा की आवाज पर उसको मनु के पास लाना, मानव को अपने पास रख लेना तथा अन्त में कैलाश-यात्रा करके श्रद्धा के सम्मुख पश्चात्ताप करना आदि इड़ा के सभी कार्य उसके इसी व्यवहार-कौशल के परिचायक हैं ।

शक्तिशाली नारी - इड़ा का यह गुण सबसे अधिक मात्रा में प्रतिफलित हुआ है 'संघर्ष' सर्ग में जबकि उह मनु से अपनी रक्षा करती है । अपनी नारीसुलभ शक्ति से ही वह (श्रद्धा की भाँति) न तो आत्म-समर्पण करती है, न लज्जानत होती है और न कल्पनाओं में डूबती है । वह तो अपने को मनु के चंगुल में पाकर भी द्वार की ओर पग बढ़ाती है, द्वार टूटने और प्रजा-विद्रोहियों के आने पर शांत रहती है, यहाँ तक कि युद्ध-रत मनु और किलात-आकुलि को रोकने का पूरा-पूरा प्रयास करती है ।

श्रद्धामयी - युद्ध को देख इड़ा पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है । वह अपने एकाँगी रुप को समझ जाती है और श्रद्धा में विश्वास करने लगती है । फलतः लम्बी कैलाश-आत्रा पर जाते हुये श्रद्धा-पुत्र मानव को पुत्रवत् अपने पास रखती है, और अन्त में स्वयं भी कैलाश पर पहुंच श्रद्धा के सम्मुख अपनी पराजय स्वीकार करती है ।

"था इड़ा शीश चरणों पर
वह पुलक-भरी गद्‌गद स्वर-
बोली - "मैं धन्य हुयी हूं
जो यहाँ भूलकर आयी
हे देवि ! तुम्हारी ममता
बस मुझे खींचती लायी
भगवती ! समझी मैं ! सचमुच
कुभ भी न समझ थी मुझको"

रूपकतत्व - इड़ा मात्र व्यक्तिगत चरित्र नहीं है वरन् उसमें तो नाना रुपकों का समावेश है । यहाँ तो वह बुद्धि अथवा बुद्धिवाद की प्रतीक है और भौतिकवाद का भी प्रतिनिधित्व करती है । श्री सुधाकर पाण्डे (प्रसाद की कवितायें) का यह कथन सत्य है, "इड़ा बुद्धिवादी सत्ता पर विश्वास करने वाली बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी के रुप में कामायनी में स्थित है ।" यह भी कहा गया है (शिवदान सिंह चौहानः काव्य-धारा) कि "इड़ा आधुनिक पूँजीवादी समाज के वर्ग-भेद और शोषण की मान्यताओं पर आधारित बुद्धि-तत्व की प्रतीक है ।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'कामायनी' में इड़ा के ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक और रुपकात्मक तीनों रुप सुरक्षित हैं । यहाँ वह प्रतीक तो है ही, एक सजीव नारी भी है । शास्त्रीय दृष्टि से वह सहनायिका है । कथा को गतिशील बनाने में उसका पूरा-पूरा सहयोग है । कवि की नारीप्रियता उसके चरित्र में भी पूरी-पूरी रमी है । निष्कर्ष-स्वरुप श्री सुधाकर पाण्डे के शब्दों में ".....वह बुद्धिवादिनी होते हुए भी लोक-शुभाकांक्षिणी, नव निर्माणमयी एवं समय-समय पर अनुभव के परिणामों का अपने चरित्र में संयोजन कर जीवन कोविकासमय बनाने के लिये विवेकपूर्वक प्रयत्नशील दीखती है । यहाँ तक कि उसके चरित्र पर श्रद्धा के गुण-धर्म का भी प्रभाव श्रद्धा की सफलता देखकर आ जाता है । निःसन्देह इड़ा एक सफल चित्रकार की सफल तूलिका से अंकित किया गया एक सफल नारी-चित्र है ।"

20.9 सहायक पुस्तकें

1 जयशंकर प्रसाद : नन्ददुलारे वाजपेयी

2 साहित्यिक निबन्ध : रामनाथ शर्मा

3 कामायनी का मूल्यांकन : गौरी शंकर

NOTES

इकाई 21
कामायनी में मनो विज्ञान एवं दर्शन

इकाई की रूप रेखा

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 कामायनी में मनोविज्ञान

- 21.2.1 कथा तत्व में
- 21.2.2 चरित्र तत्व में
- 21.2.3 वातावरण तत्व में
- 21.2.4 भाषा तत्व में
- 21.2.5 अन्य
- 21.2.6 उपसंहार

21.3 कामायनी में दर्शन

- 21.3.1 आत्मवाद
- 21.3.2 माया
- 21.3.3 ईश्वर
- 21.3.4 नियति
- 21.3.5 जगत् (विश्व प्रपंच)

21.4 निष्कर्ष

21.5 बोध प्रश्न

21.6 नमूने का उत्तर

21.7 सहायक पुस्तकें

21.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में चिंता ो।

21.1 प्रस्तावना

मनोविज्ञान और काव्य-सृजन-मनोविज्ञान शब्द 'मनु' और विज्ञान शब्दों से मिलकर बना है जिसका अर्थ है - 'मन का विज्ञान' । काव्य-सृजन से इसका जन्मजात निकट का सम्बन्ध है । प्रमाण ? दोनों का विषय 'मन' है । काव्य, सच में तो, कवि अथवा उसके निर्मित चरित्रों के मनोभावों का ही प्रकट रुप है । काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से भी कवि-हृदय के भाव और उनका उद्वेलन, कवि का भावानुकूल चरित्रों तथा घटनाओं की सृष्टि करना तथा रसिक जन का साधारणीकरण के द्वारा अंकित भावों की अनुभूति करना आदि सभी बातें काव्य-सृजन में मनोविज्ञान के महत्व की परिचायक हैं । इसी से प्रत्येक कवि किसी न किसी रुप-मात्रा में अपने काव्य में मनोविज्ञान का आश्रय लेता है । निःसन्देह प्रसाद जी भी इसके अपवाद नहीं हैं । इसका सर्वाधिक सशक्त प्रमाण है - 'कामायनी' ।

21.2 कामायनी में मनोविज्ञान

जैसा कि आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी (हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी) का कहना हैं, "प्रसाद जी मानवीय भावनाओं के कवि हैं" । साथ ही साथ यह कहना भी अनुचित न होगा कि "कामायनी मानवीय भावनाओं की महान् काव्य-कृति है जिसमें पगे-पगे मनोविज्ञान विखरा सा पड़ा है ।" बाजपेयी जी का ही शब्दों में, "यह मनु और कामायनी की कथा तो है ही, क्रियात्मक, बौद्धिक और भावात्मक विकास में सार्मजस्य स्थापित करने का अपूर्व काव्यत्मक प्रयास भी है । यही नहीं, यदि हम और गहरे पैठें तो मानव-प्रवृत्ति के शाश्वत स्वरुप की झलक भी इनमें मिलेगी ।" इतना ही नहीं वरन् ..... "मानव (मनु) का ऐसा विश्लेषण और काव्यमय निरुपण हिन्दी में शायद शताब्दियों बाद हुआ ।" मनु के विषय में स्वयं प्रसाद जी ने (कामायनी : आमुख) स्पष्टतया कहा है, "मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है - 'श्रद्धा हृदय याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु (ऋग्वेद १० - १५१-४) इन्हीं सबके आधार पर कामायनी की कथा-सृष्टि हुयी है ।" तात्पर्य यही है कि मानवीय भावनाओं के काव्य-रुप में अंकन किया होने के साथ-साथ 'कामायनी' में मनोवैज्ञानिक और तत्संबन्धी भावनाओं, अन्तर्द्वन्द्व, अहंकारादि

वृत्तियों और मनःस्थितियों का पूर्णतया मनोविज्ञान-सम्मत अंकन किया गया है । प्रमाण है - कामायनी की कथा, चरित्र, वातावरण, भाषा आदि तत्वों में विद्यमान मनोवैज्ञानिक निरुपण ।

21.2.1 कथा तत्व में - 'कामायनी' १५ सर्गो में व्याप्त मनु-श्रद्धाकी कथा है जिसका विकास इड़ा-कथा और फलागम-प्राप्ति श्रद्धा से होती है । निःसन्देह मनु-श्रद्धा और इड़ा एवं तत्सम्बन्धी अधिकांश प्रसग इतिहासपुष्ट हैं फिर भी, स्वयं कवि के शब्दों में "मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुये सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं ।" कहना न होगा कि इन पात्रों में हीं नहीं वरन् तत्सम्बन्धी समस्त कथा और घटनाओं में भी सांकेतिक अर्थ स्पष्ट हैं और उनमें सर्वाधिक प्रमुख है - मनोवैज्ञानिक अर्थ ।

'कामायनी' की कथा का श्रीगणेश मनु (मन) की चिन्तान्रस्त अवस्थासे होता हा जबकि प्रलय (परिवर्तन) के पश्चात् वे स्व और स्व-देवजाति की दुःखद स्थिति पर चिन्ता प्रकट करते हैं । 'आशा' सर्म में, प्रकृति प्रकोप के घटने से उनमें आशा भाव का संचार होता है । उनमें श्रद्धा भाव जाग्रत होता है - श्रद्धा-भेंट होने पर, 'श्रद्धा' सर्ग में । यहाँ तक आते-आते कामायनी का मनोवैज्ञानिक चित्रण दो वर्गों में बँट जाता है । पुरुष (मनु) में 'काम' और 'वासना' का उदय होता है । नारी इममें निष्क्रिय रहती है । पुरुष के काम-वासनामय होने पर उसमें 'लज्जा' का आविर्भाव होता है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यहाँ पर काम 'इष्ट प्राप्ति की इच्छा' है और वासना विषय का अभिनिवेश। श्रद्धा नारी रुप में मुग्धावस्था में है और इसी से उसके मानस में पुरुष-भेंट और काममय प्रेम प्रस्ताव के फलस्वरुप 'लज्जा' का संचार होना स्वाभाविक ही है ।

वासना का परिणाम है - अधिकाधिक तृष्णा-वृद्धि और उसकी तृप्तिके लिये 'कर्म' में प्रवृत्त होना । कर्म-प्रवृत्त होते ही व्यक्ति के स्व का विस्तार होता है परिणाम (१) 'ईर्ष्या' जिससे परिचालित व्यक्ति अहं-तृप्ति के लिये बुद्धि (इड़ा) क्षेत्र (सारस्वत प्रदेश) में प्रवेश करता है । 'इड़ा' सर्ग इसी का प्रतीक है । श्रद्धा रहित मन (मनु) इड़ामय (बुद्धिवादी) होने की कामना करता है । उसमें अहं के साथ-२ मन प्रभुत्व-भाव भी जागता है जिससे परिचालित होकर वह नियमोल्लंघन करता है और विपत्तिग्रस्त हो जाता है ।

इधर, श्रद्धा भविष्यद्दृष्टा-गुण से युक्त है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से श्रद्धावृत्ति दुखी और विपत्तिग्रस्त होने पर ही जागरुक होती है । 'स्वप्न' सर्ग में यही होता है ।

बुद्धि (इड़ा) का अतिवाद परिणत होता है - 'संघर्ष' में । बुद्धि-संघर्ष से ग्रस्त व्यक्ति का मानस विकल और अशांत होकर 'निर्वेद' भाव की ओर दौड़ता है । निर्वेद के पश्चात् ही उसमें विचारोत्तेजक स्थिति आती है । वह ज्ञान का 'दर्शन' करता है और तत्पश्चात् उसे जीवन-'रहस्य' ज्ञात होता है । रहस्य ज्ञात होने पर ही उसको 'आनन्द' प्राप्त होता है । यह आनन्द प्राप्ति भी श्रद्धा-भाव से ही सम्भव हो पाती है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि ने मनु की ऐतिहासिक कथा की इतिहास से भी अधिक मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में देखा-अंकित किया है । डा. रामलाल सिंह (कामायनी-अनुशीलन) का यह मत पूर्णतया सत्य प्रतीत होता है कि "प्रसाद जी के अनुसार अन्तर्जगत् की लीला का वितार ही बहिर्जगत् है । इसी कारण वे ऐतिहासिक घटनाओं को भी मनोविज्ञान पर कसते हैं ।"

21.2.2 चरित्र तत्व में - 'कामायनी' के प्रमुख सक्रिय चरित्र हैं - मनु, श्रद्धा और इड़ा । इसके अतिरिक्त काम, मानव, आकुलि-किलात, वृषभ, श्रद्धा-पशु आदि कुछ गौण चरित्र भी हैं । ये सभी चरित्र पूर्णरुपूण मनोवैज्ञानिक हैं अथवा मन-वृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं जैसा कि डा. विमल कुमारी जैन (कामायनी चिन्तन) का मत है, "इस कथा रुपक में मनु मन के, श्रद्धा हृदयगत श्रद्धा का - दया, ममता, त्याग एवं विश्वासपूर्ण श्रद्धा की - तथा इड़ा बुद्धि का प्रतीक है । इन प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त मनुकुमार मानव नव मानव का तथा किलात और आकुलि आसुरी प्रवृत्ति के प्रतीक हैं । प्रसाद जी ने वृषभ को धर्म का प्रतीक कहा है ।" इसी भाँति डॉ. नगेन्द्र (कामायनी के अध्ययन की समस्यायें) तो देवों को इन्द्रियों का, श्रद्धा-पशु की जीव-दया अर्थात् अहिंसा का, यहाँ तक कि सोमलता को भोग-वृत्ति का प्रतीक मानते हैं । स्थान-स्थान पर स्वयं कवि ने पात्रों का चरित्रांकन करते समय भी उनका मानवीय भावनाओं के रुप में अंकन किया है । कुछ उदाहरण देखिये -

मनु (मन) - "यह जलन नहीं सह सकता मैं,
चाहिये मुझे मेरा ममत्व,
इस पंचभूत की रचना से
मैं रमण करूँ बन एक तत्व ।"
श्रद्धा (श्रद्धा भाव) - "हृदय की अनुकृति बाह्य उदार
एक लम्बी छाया उन्मुक्त ।"

x x x

"दया, माया, ममता लो आज
मधुरिमा लो अगाध विश्वास,
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिये खुला है पास ।"
(इड़ा बुद्धि) - 'यह तर्कमयी, तू श्रद्धामय
तू मननशील कर कर्म अभय,
इसके तू सब संताप निचय
हर ले हो मानव भाग्य उदय
वृष (धर्म) - वृष धर्म का प्रतिनिधि ।।

इतना ही नहीं, कवि ने स्थान-स्थान पर मनोभावों और तद्विषयक लक्षण (भावनाओं का भी मानवीकरण करके सजीव और मनोविज्ञान-सम्मत अंकन किया हैं । चिन्ता, आश, काम, वासना, ईर्ष्या, आदि ऐसे ही कुछ मनोभाव हैं । उदाहरण के लिये लज्जा का एक रुप देखिये -

सब अग मोम से बनते हैं,
कोमलता में बल खाली हूँ
मैं सिमट रही-सी अपने में
परिहास गीत सुन पाती हूँ ।
छूने में हिचक, देखने में
पलकें आंखों पर झुकती हैं,
कलरव परिहास भरी गूँजें
अधरों तक सहसा रुकती हैं ।

21.2.3 वातावरण तत्व में - कामायनी में बाह्य वातावरण की अपेक्षा अन्तरिक हृदयगत वातावरण की प्रमुखता है । मनु, श्रद्धा, इड़ा आदि की अन्तःस्थितियों का अंकन इसी के अन्तर्गत आता है । मनु का चिंतन, नैराश्य, अवसाद आदि, श्रद्धा का विरह, लज्जा-अनुभव और स्वप्नादि, इड़ा का निराश मनु को कर्म सलाह की प्रेरणा देना आदि इसी आंतरिक उआतावरण के परिचायक हैं । इसी भाँति काम का शाप, लज्जा का उपदेश और त्रिपुर-रहस्य आदि इसी वर्ग में आते हैं । इन सभी से कवि ने, वास्तव में, मनोविज्ञान-विषयक मनःस्थितियों का ही अंकन किया है । उदाहरणस्वरुप निम्न काव्यांश देखिये -

"प्यासा हूँ मैं अब भी प्यासा
सन्तुष्ट ओध से मैं न हुआ
आया फिर भी वह चला गया
तृष्णा को तनिक न चैन हुआ ।
मेरा अतिचार न बन्द हुआ
उन्मत्त रहा सबको घेरे ।"

21.2.4 भाषा तत्व में - मनोवैज्ञानिक कथा और चरित्र से युक्त होने के कारण 'कामायनी' में मनोवैज्ञानिक भाषा का होना स्वाभाविक ही है । कामायनी में प्रयुक्त चिंता, आशा, श्रद्धा, वासना, ईर्ष्या, आनन्द आदि सर्गों के नाम, मन, बुद्धि, प्राण, हृदय, गर्व-रथ क्रिया,, इच्छा, भावलोक, कर्मलोक, ज्ञानलोक, मनोमय, कोश, अन्नमम कोश, विज्ञानमय कोश, संवेदन, अनुभूति, संकल्प, धृति, अधृति, चेतनत़ा, समरस, तन्मय, आदि शब्द ऐसे ही कुछ प्रमाण हैं ।

21.2.5 अन्य - उपर्युक्त तत्वों के अतिरिक्त कुछ अन्य साधनों से भी कवि ने 'कामायनी' में मनोविज्ञान की प्रतिष्ठा की है । इस ग्रन्थ के सभी का सर्गों नामकरण मनोभावों पर है । सभी में परस्पर मनोवैज्ञानिक क्रम है । नाना भावों के अन्तर्गत उनसे सम्बन्धित नाना भावनाओं का अंकन किया गया हैं। प्रमाण ? 'चिन्ता' में विस्मृति, वैवर्ण्य, जड़ता, आदि, 'आश' में विश्वास, कुतूहल, जीवन के प्रति अनुराग, सहानुभूति, संवेदनशीलता, माधुर्य, उत्साह,

सान्त्वना, आत्मसमर्पण, संकोच, मानव की मंगलकामना आदि तथा लज्जा में संकोच, शिथिलता, झिझक, कोमलता, स्मिति, बांकपन, अनुराग, अभिलाषा, आत्म-समर्पण हिचक, व्रीड़ा, रोमानी भ्रम, औत्सुक्य, पकड़, उन्माद, अतृप्ति, अवसाद, मन का ढीलापन, अश्रु, उत्सर्ग आदि न जाने कितनी मनोभावनायें, संचारी स्थितियाँ और अन्तर्वाह्य लक्षण यहाँ पर उपस्थित हैं ।

21.2.6 उपसंहार - उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कामायनी में मनोविज्ञान अपने पूर्ण उत्कर्ष और काव्य रस से परिपूर्ण रुप में उपस्थित हुआ मिलता है। यहाँ तक कि कुछ आलोचक तो इसको 'अनावश्यक का मात्रा' तक बताते हैं । सदाहरणार्थ डा. देवराज (छायवाद का पतन) का मत है, 'मनोवैज्ञानिक रुपक के निर्वाह के फेर में प्रसाद जी न तो अपने पात्रों को सुस्पष्ट व्यक्तित्व ही दे सके हैं और न कथा-प्रवाह की रक्षा कर सके हैं ।" दूसरी ओर यहाँ पर यह बात भी विशेष दृष्टव्य है कि कामायनी हिन्दी-जगत् में प्रथम महाकाव्य है जिसमें मनोविज्ञान का निर्वाह इतना अधिक और काव्य-प्रभाव के साथ हुआ मिलता है । एकदम सच तो, डा. रस्तौगी के शब्दों में यह है कि, "मानसिक वृत्तियों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रुप अथवा गुण को पकड़ पाने और उसे पूर्ण छायावादी अभिव्यक्ति प्रदान कर पाने में प्रसाद जी हिन्दी में बेजोड़ हैं और हिन्दी-जगत् में उनकी (और कामायनी की भी) कीर्ति का प्रमुख आधारस्तम्भ उनकी एक यह विशेषता भी रही है ।" निष्कर्षस्वरुप स्वयं प्रसाद जी (कामायनी : आमुख) के शब्दों में ही कह सकते हैं कि "यदि श्रद्धा और मन अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रुपक है तो भी बड़ा ही भावमय और श्लाध्य है । यह मनुष्यता का मनौवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है । ..... सूक्ष्म अनुभूति या भाव, चिरंतन सत्य के रुप में प्रतिष्ठित रहता है ।"

21.3 कामायनी में दर्शन

दर्शन और काव्य - दर्शन का अभिधार्थ है - 'देखना' । व्युत्पत्तिक अर्थ में इस शब्द का प्रयोग 'जिसके द्वारा दर्शन करना सम्भव हो' के लिये किया जाता है - 'दृश्यतेऽनेन होता है - 'ज्ञात के प्रति प्रेम-भाव' जबकि व्यजनाओं में

यह शब्द 'दृश्य जगत के आधार पर उसके यथार्थ स्वरुप को उद्‌घाटित करने वाले शास्त्र' के लिये प्रयुक्त होता है । भारतीय मान्यता के अनुसार, ऋषि जनों द्वारा अपनी भाव-बुद्धि से देखे गये तथ्यों का समुच्च्य ही 'दर्शन' है । इस प्रकार, काव्य-क्षेत्र में इस शब्द का प्रयोग प्रायः दो अर्थों में किया ज़ाता है - (१) जीवन-दृष्टि तथा (२) जीवन-जगत् के पारमार्थिक स्वरुप तथा मानव-जीवन के चरम लक्ष्य का चिंतन, मनन और साक्षात्कार । ध्यान से देखें तो दोनों अर्थ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं ।

दर्शन का मूल है - मानव का जिज्ञासा भाव । दर्शन प्रायः शुष्क, नीरस और निरानन्दी होता है जबकि कवि रागोत्प्रेरक और प्रभावोत्पादक बनाकर इसको भी सरल रुप बना देता है । शास्त्रीय दृष्टि से भी दर्शन का काव्य के चार उद्देश्यों में से प्रथम और चतुर्थ अर्थात् धर्म और मोक्ष से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है । इस प्रकार दर्शन और काव्य का निकट सम्बन्ध है ।

प्रसाद (कामायनी) दर्शन की पृष्ठभूमि - प्रत्येक कवि की विचारधारा उमके अपने व्यक्तित्व, वंशानुगत परिवेश, अध्ययन, रुचि आदि का परिणाम होती है । दर्शन-विषयक विचारधारा भी इसका अपवाद नहीं । इस दृष्टि से देखें तो प्रसाद जी प्रदत 'कामायनी' का दर्शन अथवा दार्शनिक विचारधारा इन्हीं तत्वों से प्रभाववित-प्रेरित है जैसा कि प्रसाद जी के अन्तरंग - अध्येता श्री विनोद शंकर व्यास ने भी स्वीकार किया है, "प्रसाद जी का व्यक्तित्व बहुत स्पष्ट था । वे सात्विक वृत्ति के व्यक्ति थे ।" दूसरे, उनके व्यक्तित्व का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है - करुणा । डा. फ्तेहसिंह (कामायी-सौदर्य) ने ठीक ही कहा है, "प्रसाद जी के व्यक्तित्व में करुणा अपना विशेष स्थान रखती है । बारहवें वर्ष में पिता, पन्द्रहवें में माता तथा सत्रहर्वे में ज्येष्ठ भ्राता के निधन के हृदयद्रावक दृश्य मानो किशोर जयशंकर प्रसाद को करुणा-प्लावित करने के लिये पर्याप्त न थे, इसलिये नियति ने एक के बाद दूसरी पत्नी का वियोग भी उनके लिये ला उपस्थित किया । उनकी विधवा भौजाई तो 'करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी' होकर उनके लिए करुणा का चिर स्त्रोत ही बन गई थी । दुःखद प्रसंगों से उनके कोमल कवि-हृदय को जो प्रेरणा मिली, उसी से वे बेद और वर्धमान, बुद्ध और बौद्ध तथा बाल्मीकि और व्यास की करुणा को हृदयंगम कर अपने साहित्य में उसकी व्यापक और

उदात्त अभिव्यक्ति कर सके । तीसरे, परम्परागत धन-वैभव और तत्कालीन बनारस के धनी वर्ग में प्रचलित उदारता और परिवारगुरुता ने भी उनकी 'हृदयसत्ता का सुन्दर त्य' समझाया । चौथे, सौंदर्य की व्यापक कल्पना, प्रकृति-प्रेम और तद्जनित छायावादी कल्पना-परक रुचि ने भी उनको चिंतक बनाने में सहायता की होगी । पाँचवें, व्यक्तिगत रुप से प्रसाद जी शैवोपासक थे, शिव उनके कुल देवता थे । छठे, अपने विस्तृत और गहन अध्ययन से वे वेद, पुराण, उपनिषद आदि संस्कृत दर्शन, जैन-बौद्ध आदि से लेकर आधुनिक कालीन विकासवाद, साम्यवाद, भौतिकवाद, परमाणुवाद, बुद्धिवाद और परिवर्तनवाद आदि नाना दार्शनिक विचारधाराओं से परिचित हो गये थे । इन्हीं सबके आधार पर 'कामायनी' के दर्शन की अट्टालिका का निर्माण हुआ । प्रमाण है - कामायनी में प्राप्त दर्शन का अंकित रुप ।

कामायनी में दर्शन - 'कामायनी' की कथा, चरित्र, वातावरण आदि मात्र ऐतिहासिक नहीं वरन् रुपकमय हैं जिनका एक छोर है - मनोविज्ञान और दूसरा दर्शन । यह दर्शन कवि प्रसाद का दर्शन है जिसने उनको श्रेष्ठ कवि भी सिद्ध किया है और गहन दार्शनिक भी । ब्राउनिंग गी यह उक्ति 'कामायनी' पर भी सटीक उतरती है कि "When passion and philosophy meet in a single individual, we have a great poet". कामायनी में कवि ने प्रत्यक्ष और परोक्ष अर्थात् स्व-कथनों और चरित्रों, स्थानों, घटनाओं आदि विविध साधनों से अपनी दार्शनिक मान्यताओं को प्रकट किया है । संक्षेप में ये, निम्नांकित हैं -

आनन्दवाद - कामायनी का श्रीगणेश होता 'चिन्ता' से और समाप्ति 'आनंद' से । इस प्रकार प्रो. रमेश चन्द गुप्त (कामायनी : एक दृष्टि) के शब्दों में, कामायनी का 'पहला छोर है चिन्ता और दूसरा आनन्द । इस प्रकार कवि का चरम उद्देश्य है मानव को (मनु या मानव-मन जो) चिन्ता से आनन्द तक ले जाना और इसी रुप में कामायनी के नायक (मनु) का प्राप्य है आनन्द । यही उसका साध्य है ।" इसी भाँति डा. नगेन्द्र (कामायनी के अध्ययन की समस्यायें) का मत है, "कामायनी की प्रमुख घटना है मनु की मानसरोवर-यात्रा जिसका प्रतीकार्थ है मानव-मन की आनन्द साधना । "तदनुसार कामायनी में निहित जीवन-दर्शन का चरम साध्य हुआ, आनन्द और कामायनी का मूल प्रतिपाद्य हुआ आनन्दवाद ।"

यह शब्द-आनन्द या आनन्दवाद-प्रसाद जी ने शैवागमों के प्रत्यभिज्ञा-दर्शन से लिया है । इसके अनुसार 'शिवशक्ति मथ्य-मथ्थक-भाव से परस्पर सहारित हो इच्छा, कर्म और ज्ञान तीनों में सामरस्य लाकर आनन्द उत्पन्न करते हैं ।' प्रसाद जी ने इसको व्यावहारिक रुप देते हुए बताया है कि उनकी समरसता में शक्ति-विरोधी वृत्तियों की भी समरसता है । 'दर्शन' सर्ग में शिव का ताँडव इसी का प्रमाण है ।

प्रश्न उठता है - कवि ने इसको क्यों अपनाया ? उत्तर स्वयं कवि ने 'काम' सर्ग में दे दिया है कि -

सब कहते हैं 'खोलो खोलो
छवि देखूँगा जीवन-धन की',
आवरण स्वयं बनते जाते
है भीड़ लग रही दर्शन की ।"

दूसरे, आज के बुद्धिवाद में फंसे मानव को प्रताड़ित होते देख उसका मार्गदर्शन करना भी कवि का इष्ट रहा है । फलतः आधुनिक युग का आर्तस्वर भी यहाँ मुखर है ।

प्रसाद जी तटस्थ आनन्दवाद के समर्थक हैं । आर्यों के इन्द्र के 'आत्मवाद' से श्रुति-निगम, पुराण, जैन-बौद्ध, सिद्ध, नाथ, कबीर आदि तक यह सभी में विकसित रहा मिलता है । डा. नगेन्द्र ने ठीक ही कहा है कि "कामायनी में आनन्द के जिस रुप की प्रतिष्ठा है, वह स्पष्टतः आत्मस्थ है । वह अन्तर्मुख आनन्द या आत्मानन्द है - बाह्य, गोचर, विश्वरुप में प्रसरित आनन्द नहीं । इच्छा, क्रिया और ज्ञान के सामंजस्य से उत्पन्न मनःस्थिति इसकी भूमिका है।" 'रहस्य' और 'आनन्द' सर्गों में कवि ने इसी को स्वीकृति दी है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसका रुप-चित्रण करते हुए बताया है कि "कामायनी में आनन्दवाद की प्रतिष्ठा दार्शनिकता के ऊपरी आभास के साथ कल्पना की मधुमती भूमिका बनाकर की है । यह आनन्दवाद बल्लभाचार्य के 'काम' या आनन्द के ढंग का न होकर तांत्रिकों और योगियों की अंतर्भूत पद्धति पर है।" तैत्तरीय उपनिषद, मुंडकोपनिषद, स्वच्छन्दसार, गीता और आधुनिक मनोविज्ञान से पुष्ट यह आनन्दवाद आत्मा का ही स्वरुप है । रुपकानुसार

मनु (मन) श्रद्धारहित होकर इड़ा (बुद्धि) की ओर आकर्षित होते हैं । फलतः उनमें भेदत्व बढ़ता है । कारण ? बुद्धि क्षमता-प्रदाता है जिसका उपयोग तो श्रद्धा भाव की प्रेरणा से ही सभव है । तात्पर्य यही है कि आनन्द की प्राप्ति कोरी बुद्धि से असम्भव है । 'कामायनी' के 'रहस्य' और 'आनन्द' सर्गों में श्रद्धा ही मनु (मन) को आनन्दमय बनाती है ।

समरसता - साधारणतः दो विरोदी वस्तुओं के द्वन्द्व का अभाव ही समरसता है । यह भी शैवागमों का एक पारिभाषिक शब्द है । यहाँ पर शिवत्व योजना के अन्तर्गत आवश्यक तेरह पदार्थों के ज्ञान में से यह एक है । गीता में इसी को 'समत्व भावना', योगियों में निर्विशेष स्थिति' शैवों में 'चिदानन्द-प्राप्ति' तथा अन्य दर्शनों में 'सर्वभाव या परम भाव' कहा गया है ।

'कामायनी' में कवि ने इसको व्यावहारिक रुप प्रदान किया है । उसके अनुसार मानव (मनु) भ्रमवश आत्मा पर स्थूल का आरोप करने के कारण उसके वास्तविक स्वरुप आनन्द को विस्मृत कर देता है । श्रद्धा-भाव ही मानव को इस स्थिति का भान कराता है और बताता है कि आनन्द-प्राप्ति के लिये मानसिक क्रियाओं में रामरस्य स्थापित करना चाहिये । यह सामरस्य द्वन्द्व मिटने पर ही सम्भव है । द्वन्द्व अभेद दृष्टि उत्पन्न होने पर ही मिट सकता है अर्थात् हम प्रत्येक वस्तु में शिवत्व के दर्शन करें और हमारी अन्तर्वाह्य वृत्तियों में समन्वय हो जाये तभी मिटकर अभेद या समरसता की स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है ।

कामायनी में समरसता की सूत्रधार एकमात्र श्रद्धा है । वहीं वहाँ पर समरसता के वीन रुपों व्यक्ति की समरसता, समाज की समरसता, प्रकृति और पुरुष की समरसता - का - दिगर्दर्शन कराती है । व्यक्ति की समरसता श्रद्धा के जीवन में है । समाज-समरसता के अभाव में ही सारस्वत प्रदेश में विप्लव और 'संघर्ष' होता है । प्रकृति और पुरुष की समरसता मुखर हुयी है - 'आनन्द' सर्ग में, श्रद्धा-मनु की समरस स्थिति में । 'रहस' सर्ग में कर्म, ज्ञान और इच्छा की समरसता के द्वारा श्रद्धा द्वारा जीवन को आनन्दमय बनाने का मूल-मंत्र बताया गया है । श्री रामलाल सिंह ने ठीक ही कहा है, "कामायनी के मूल में आनन्द की साधना का प्रधान तत्व श्रद्धा है और सामरस्य उसका साधन । यदि सामरस्य प्रयत्न है तो आनन्द [illegible] ।" समरसता

को स्वयं कवि ने, मनु की निम्न पंक्तियों में, स्पष्ट कर दिया है -

"हम अन्य न और कुटुम्बी, हम केवल एक हमी हैं ।
तुम सब मेरे अवयव हो जिसमें कुछ नहीं कमी है ।
शापित न वहाँ है कोई तापित पापी न यहाँ है,
जीवन-वसुधा समनल है जो कि जहाँ है ।"

निःसन्देह, डा. वेदज्ञ आर्य (कामायनी की पारिभाषिक शब्दावली) के शब्दों में यह कहना अक्षरशः सत्य है, कि, 'कामायनी में एक ओर समरसता का आध्यात्मिक रुप शैवागमों के आधार पर प्रतिपादित हुआ है और दूसरी ओर,उसका लौकिक या व्यावहारिक रुप वैदिक वाङ्मय तथा गीता के आधार पर चित्रित हुआ है । 'वस्तुतः प्रसाद जी की समरसता-विषयक यह मौलिक उद्भावना दर्शन एवं साहित्य के लिये अपूर्व देन है ।

श्रद्धा - श्रद्धा की व्युत्पत्ति श्रत् + था (हृद् + था) है जिसका अर्थ है - जिसमें हृदय स्थापित किया जा सके । अतएव श्रद्धा हृदय के सभी भावों की प्रतीक है । यास्काचार्य (निरुक्त : ३/६ दैवतकांड) ने कहा है - "श्रद्धा श्रद्धानात् (सत्यमस्यांधीयत इति श्रद्धा)" अर्थात् सत्य को धारण करने वाली वस्तु श्रद्धा है ।' यहाँ पर यह बात भी दृष्टव्य है कि 'सत्य को धारण करना, उसका अन्वेषण करना, उसका साक्षात्कार करना आदि ही दर्शन के विषय हैं ।' कामायनीकार ने श्रद्धा को इसी रुप में ग्रहण किया यथा निम्नांकित उद्धरण देखिये -

i) "कुतूहल खोज रहा था व्यस्त, हृदयसत्ता का सुन्दर सत्य"
ii) "विषमता की पीड़ा से व्यस्त हो रहा स्पन्दित विश्व महान
यही दुख सुख विकास का सत्य यही भूमा का मधुमय दान ।"
iii) यह क्या ! श्रद्धे ! बस तू ले चल
उन चरणों तक, दे निज सम्बल ।"

'कामायनी' में श्रद्धा का केवल सात्विक रुप अंकित है । तंत्रों के आधार पर, प्रसाद जी ने भी उसको 'कामगोत्रजा' अर्थात् सृष्टि-विकास का मूल कारण माना है । श्रद्धा द्वारा त्रिपुरों को मिलाने की घटना भी तत्रों की देन है- 'त्रिपुरानन्तशक्त्यैक्य रुपिणी सर्वसाक्षिणी ।" चरित्र का मूलाधार भी श्रद्धा है

क्योंकि चरित्र का निर्माण प्रेरणा से और प्रेरणा श्रद्धा या हृदय से ही होती है - "छाया है विश्वास की श्रद्धा सरिता कूल ।" इस प्रकार डा. वेदज्ञ आर्य के शब्दों में, "कामायनी में प्रसाद जी ने श्रद्धा के दार्शनिक अर्थ के आधार पर प्रायः सभी रूपों को ग्रहण किया है और तदनुसार उसका चित्रण करके वर्तमान युग में भी उसकी दीर्घ परम्परा को सुरक्षित और अक्षुण्ण रखा है ।"

21.3.1 आत्मवाद - "एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़" के अनुसार प्रसाद जी भी सर्वत्र अपने को देखते हैं । वे शिवतत्व और शक्तित्व दोनों को ही मानते हैं यद्यपि दूसरा तत्व अर्थात् शक्तित्व भी प्रथम अर्थात् शिवतत्व का ही व्यक्त रुप है । इन दोनों की सत्ता एक दूसरे पर निर्भर है । तत्वातीत अवस्था में दोनों का सामरस्य हो जाता है । यही शिवशक्ति का, शैवागम के अनुसार, सामरस्य है । शैव इसी को "परमशिव" और शाक्त 'पराशक्ति' कहते हैं । कामायनीकार ने उसको पराशक्ति के रुप में ही अंकित किया है । शक्ति अद्वैतवाद के पोषक होने के कारण प्रसाद जी इदं में अहं को लीन करने की साधना को स्वीकार करते है ।

21.3.2 माया - शैव ग्रन्थों में प्राप्त 'माया' शब्द की व्युत्पत्ति है - मा + या। 'मा' का अर्थ है - प्रलय में जगत का अधिष्ठान और 'या' का अर्थ है - सुष्टि में होने वाला पदार्थ । माया की कल्पना प्रसाद जी ने तंत्रों से ग्रहण की है । इसके अनुसार माया शक्ति से अभिन्न और विश्व का मूल कारण है । यह ईश्वर की विश्व--सृजन-शक्ति है जो प्रत्येक जीव को अपने-अपने कार्यों में संलग्न रखती है । 'श्रद्धा' में इसका शुद्ध रुप मिलता है यथा -

"यह लीला जिसकी विकास चली ।
वह मूल शक्ति थी प्रेम कला ।।
उसका संदेश सुनाने को ।
संस्कृति में आई वह अमला ।।"

21.3.3 ईश्वर - कामायनीकार के अनुसार ईश्वर अनन्त रमणीय, अनिवार्य, विराट और विश्व-देव है । यह समस्त विश्व में प्याप्त है और शिव ही है । इस प्रकार कवि ने कामायनी में अद्वैतवाद का ही समर्थन किया है ।

21.3.4 नियति - शैव दर्शन में मान्य छत्तीस तत्वों में से एक तत्व है - नियति जो 'जीव की स्यातत्र्य शक्ति का तिरस्कार करती है ।' यहा माया की संतति है । शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से यह 'यम' धातु से निर्मित है ।' इसका शब्दार्थ है - वह शक्ति जिससे आत्मा निबद्ध होती है - "नियति : नियम्यते आत्मा अनयेति" (हलायुधकोश) । शैवागम की भाँति, 'कामायनी' में भी यह नियामिका शक्ति है जिसको साधारणतः भाग्य, भवितव्यता आदि भी कहा गया है । 'कामायनी' में इसके तीनों रुप-नियामिका, नियोजिका एवं निरोधिका- मिलते हैं तथा -

i) "विश्व बँधा है एक नियम से"

ii) "कातरता से भरी निराशा देख नियति पथ बनी वहीं ।"

iii) "नियति चलाती कर्म चक्र यह
तृष्णा जीवन ममत्व वासना ।"

सच में, डा. वेदज्ञ आर्य के शब्दों में, "प्रसाद जी का नियति के विषय में व्यक्तिगत अनुभव तथा शास्त्रानुशींलन अत्यन्त विस्तृत और गम्भीर था । 'वह उक्त तीनों की पृथक्-पृथक् शक्ति के रुप में अभिव्यक्त हुई है ।'

शिव - प्रसाद जी शैव थे और शैवागम के अध्येता । शैवागम में शिव के पाँच रुप मान्य हैं - संहारक, सृष्टा, मायायोगी दिगम्बर, मंत्रविद् ऋषि तथा नटराज । 'कामायनी' में कवि ने शिव के इन पाँचों रुपों को ही अभिव्यक्त किया है, यथा -

1) संहारक - "प्रकृति त्रस्त थी, भूतनाथ ने नृत्य विकम्पिक कर अपना,
उधर उठाया, भूत सृष्टि सब होने जाती थी सपना ।"

2) सृष्टि - "अखिल विश्व का पीते हो विष, सृष्टि जियेगी फिर से ।"

3) मायायोगी दिगम्बर - "अचल अनंत नील लहरों पर बैठे देव ।"

4) मंत्रविद ऋषि - "वह चन्द्र किरीट रजत नग स्पन्दित-सा पुरुष पुरातन;
देखता मानसी गौरी लहरों का कोमल नर्तन ।"

5) नटराज - "अर्न्तनिनाद ध्वनि से पूरित, थी शून्य भेदिनी सत्ता चित् ;
नटराज स्वयं थे नृत्य निरत, था अंतरिक्ष प्रहसित मुखरित ।"

सात ही साथ शिव का निवास (कैलाश), वाहन (वृषभ) शक्ति (गौरी) आदि का अंकन भी कवि ने स्थान-स्थान पर किया है ।

आत्मा - कामायनी में, शैवागम की मान्यता के अनुसार ही, आत्मा के लिये चिति, महाचिति, चेतनता आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है । ग्रन्थ के अन्त तक आते-आते तो नायक-नायिका भी इसी के अनुकूल शिव-शक्ति रुप हो जाते हैं । यहाँ पर आत्मा ही परम तत्व (शिव) है जो अपनी इच्छा से शिव का निर्माण करती हैं, यथा -

"अपने दुख-सुख से पुलकित, यह मूर्त विश्व सचराचर,
चिति का विराट वपु मंगल, यह सत्य सतत चिर सुन्दर ।"

जीव - शैवागम में जीव को नाना बन्धनों में बद्ध माना गया है । ये बंधन दार्शनिक शब्दावली में 'कंचुक' कहलाते हैं और छः हैं - काल, कला, नियति, राग, विद्या और माया । इनसे बद्ध होकर जीव भटकता रहता है और नाना कष्ट भोगता है । 'कामायनी' में मनु इसी जीव-रुप में चित्रित किये गये मिलते हैं । इस सम्बन्ध में प्रो. रमेशचन्द्र गुप्त ने ठीक ही कहा है, "जीव के प्रतीक-रुप में मनु हमें प्रत्यभिज्ञा तीन भूलों और छः कंचुकों से आवृत स्थिति है । कामायनी के पूर्वार्ध में मनु को इसी रुप में अंकित किया गया है । वे 'निर्वेद' सर्ग तक भेद बुद्धि के प्राधान्य के कारण शाक्त स्थिति में और तदुपरांत केवल अभेद-भावना के कारण शांभुव स्थिति में आते हैं । यहाँ वे त्रिक् दर्शन के अनुसार जीव की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं को पार कर तुरीयावस्था में पहुंच जाते हैं और इसके उपरांत उनका प्रारम्भिक जीवन-अर्थात् ईर्ष्या सर्ग तक - 'सकल' है, यहाँ से निर्वेद तक 'प्रलयाकल' है । दर्शन सर्ग की अन्तिम स्थिति 'विज्ञानकाल' की स्थिति है और रहस्य सर्ग के अन्त से उनकी जीवन-स्थिति 'शुद्ध' के अन्तर्गत परिगणित की जायेगी ।"

21.3.5 जगत् (विश्व प्रपंच) - कामायनी के पूर्वार्ध में अवसादमना मनु जगत् की निस्सारता, विवश स्थिति, दुःखमयता आदि विषयक उद्‌गार प्रकट करते हैं । आवृतावस्था में होने से वे दर्शन के सिद्धांत पक्ष में नहीं आते । सैद्धांतिक दर्शन का श्रीगणेश 'कामायनी' में 'श्रद्धा' सर्ग से होता है जहाँ श्रद्धा-मनु-संवाद में जगत् और विश्व-प्रपंच विषयक धारणाओं को

मुखर किया गया है । प्रसाद जी का जगत् "चिति का विराट वपु मंगल, यह 'सत्य सतत चिर सुन्दर" तथा 'विश्व का उन्मीलन अभिराम' है जिसमें 'सब अनुरक्त होते हैं' । 'दर्शन सर्ग' में भी 'यह लोचन-गोचर सकल लोक' अन्तर्गत जगत् को शैव सिद्धातानुसार ही अंकित किया गया है ।

जहाँ तक प्रश्न है - जगत् या विश्वप्रपंच का, शैव-दर्शन के अनुसार 'सृष्टि, विकास हेतु शिव-शक्तियो में आकुंचन होने पर पुष्य या अणुओं की उद्भावना होती है । इनको छत्तीस तत्वों के रुप में गिता जाता है' 'कामायनी' में ये सभी तत्व विवेचित हैं । प्रो. रमेशचन्द्र गुप्त ने इनके विषय में ठीक ही कहा है, "माया के साथ काल, नियति, कला, विद्या और राग ये पाँच तत्व मिलकर षटकंचुक कहलाते हैं । रहस्य सर्ग में मनु इनसे मुक्त होते हुये आगे बढ़ते हैं। शब्द, स्पर्श, रस, रुप, गंध इन पांच तन्मात्राओं और नानिका, जिह्वा, चक्षु, त्वक् और श्रवण - इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों का भावलोक के वर्णन में उल्लेख हुआ है । कर्मलोक के वर्णन के प्रसंग में वाक् से उपस्थ तक की पाँच कर्मेन्द्रियों (वाक्, पाणि, पाद, वायु, उपस्थ) का उल्लेख है । "पाँच भौतिक तत्वों - आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी का विवेचन आशा सर्ग में देखा जा सकता है ।"

अन्य मान्यतायें - वैयक्तिक जीवन की भाँति 'कामायनी' में भी प्रसाद जी मुख्यतः शैवागम का अनुकरण करते हैं । इसके अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रन्थ में उन्होंने कुछ अन्य दार्शनिक मान्यताओं का भी उल्लेख किया है । ये मान्यतायें कुछ तो परम्परा रुप में आयी है और कुछ युग-प्रभाव के फलस्वरुप । बौद्ध दर्शन के दुःखवाद, क्षणिकवाद, और शून्यवाद, जैन दर्शन का अहिंसावाद, डार्विन का विकासवाद और कार्लमार्क्स का 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' एवं आधुनिक युग का बुद्धिवाद आदि ऐसे ही कुछ उदाहरण हैं । इनमें से भौतिकवाद और बुद्धिवाद क्रमशः देव-संस्कृति और सारस्वत-प्रजा के विरोध एवं इड़ा के माध्यम से अभिव्यक्त हुए हैं और कवि ने इनका प्रायः विरोध ही किया है । कुछ उदाहरण भी देखिये -

दुःखवाद - "वे सब डूबे, डूबा उनका विभव, बन गया पारावार,
उमड़ रहा है देव-सुखों पर जलधि का नाद अपार ।"

क्षणिकवाद - "तुच्छ नहीं है अपना सुख भी, श्रद्धे वह भी कुछ है,
दो दिन के इस जीवन का तो वही चरम सब कुछ है ।"

शून्यवाद - "हंस पड़ा गनन वह शून्य लोक,
जिसके भीतर बस कर उजड़े कितने ही जीवन-मरण शोक ।"

विकासवाद - "वह नीड़ मनोहर कृतियों का, यह विश्व-कर्म रंग-स्थल है,
है परम्परा लग रही यही यहाँ ठहरा जिसमें जितना बल है ।"

21.4 निष्कर्ष

प्रसाद जी के दर्शन में सर्वाधिक शक्तिशाली प्रेरक स्त्रोत 'शैवागम दर्शन' रहा है और उनकी अधिकांश दार्शनिक मान्यतायें उसी से ग्रहीत हैं । 'कामायनी' में भी अधिकांशतः यही छाया रहा है और इसी के माध्यम से कवि ने अपने रहस्य-भाव को मुखर किया है । साथ-ही-साथ अन्य दार्शनिक मान्यताओं और विचारधाराओं को भी उसने पक्ष-विपक्ष की दृष्टि से देखा-परखा और अंकित किया है । परिणाम ? 'कामायनी' काव्य-कृति होने के साथ-साथ दर्शन-बाहुल्य से भी ओत-प्रोत हो गई है । सच तो यह है कि प्रसाद जी ने "दर्शन से जीवन को देखा है और जीवन से दर्शन को । अतएव वे कामायनी की दार्शनिक पीठिका पर मानवजीवन का आनन्दपूर्ण भवन-निर्माण करने में सफल-एकदम सफल हुए हैं ।" इतना ही नहीं वरन् "कामायनी आगम ग्रन्थ" बन गया है ।

21.5 बोध प्रश्न

1 कामायनी में अभिव्यक्त मनोवैज्ञानिकता पर विचार प्रस्तुत कीजिए।

2 कामायनी में निरूपित दर्शन विषयक विचार धारा का विवेचन कीजिए।

21.6 नमूने का उत्तर

1 कामायनी में निरूपित दर्शन विषयक विचार धारा का विवेचन कीजिए।

उत्तर - दर्शन और काव्य - दर्शन का अभिधार्थ है - 'देखना' । व्युत्पत्तिक अर्थ में इस शब्द का प्रयोग 'जिसके द्वारा दर्शन करना सम्भव हो' के लिये

किया जाता है - 'दृश्यतेऽनेन होता है - 'ज्ञात के प्रति प्रेम-भाव' जबकि व्यजनाओं में यह शब्द 'दृश्य जगत के आधार पर उसके यथार्थ स्वरुप को उद्घाटित करने वाले शास्त्र' के लिये प्रयुक्त होता है । भारतीय मान्यता के अनुसार, ऋषि जनों द्वारा अपनी भाव-बुद्धि से देखे गये तथ्यों का समुच्च्य ही 'दर्शन' है । इस प्रकार, काव्य-क्षेत्र में इस शब्द का प्रयोग प्रायः दो अर्थों में किया जाता है - (१) जीवन-दृष्टि तथा (२) जीवन-जगत् के पारमार्थिक स्वरुप तथा मानव-जीवन के चरम लक्ष्य का चिंतन, मनन और साक्षात्कार। ध्यान से देखें तो दोनों अर्थ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं ।

दर्शन का मूल है - मानव का जिज्ञासा भाव । दर्शन प्रायः शुष्क, नीरस और निरानन्दी होता है जबकि कवि रागोत्प्रेरक और प्रभावोत्पादक बना:कर इसको भी सरल रुप बना देता है । शास्त्रीय दृष्टि से भी दर्शन का काव्य के चार उद्देश्यों में से प्रथम और चतुर्थ अर्थात् धर्म और मोक्ष से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है । इस प्रकार दर्शन और काव्य का निकट सम्बन्ध है ।

प्रसाद (कामायनी) दर्शन की पृष्ठभूमि - प्रत्येक कवि की विचारधारा उसके अपने व्यक्तित्व, वंशानुगत परिवेश, अध्ययन, रुचि आदि का परिणाम होती है । दर्शन-विषयक विचारधारा भी इसका अपवाद नहीं । इस दृष्टि से देखें तो प्रसाद जी प्रदत 'कामायनी' का दर्शन अथवा दार्शनिक विचारधारा इन्हीं तत्वों से प्रभावित-प्रेरित है जैसा कि प्रसाद जी के अन्तरंग - अध्येता श्री विनोद शंकर व्यास ने भी स्वीकार किया है, "प्रसाद जी का व्यक्तित्व बहुत स्पष्ट था । वे सात्विक वृत्ति के व्यक्ति थे ।" दूसरें, उनके व्यक्तित्व का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है - करुणा । डा. फतेहसिंह (कामायी-सौदर्य) ने ठीक ही कहा है, "प्रसाद जी के व्यक्तित्व में करुणा अपना विशेष स्थान रखती है । बारहवें वर्ष में पिता, पन्द्रहवें में माता तथा सत्रहवें में ज्येष्ठ भ्राता के निधन के हृदयद्रावक दृश्य मानो किशोर जयशंकर प्रसाद को करुणा-प्लावित करने के लिये पर्याप्त न थे, इसलिये नियति ने एक के बाद दूसरी पत्नी का वियोग भी उनके लिये ला उपस्थित किया । उनकी विधवा भौजाई तो 'करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी' होकर उनके लिए करुणा का चिर स्त्रोत ही बन गई थी । दुःखद प्रसंगों से उनके कोमल कवि-हृदय को जो प्रेरणा मिली, उसी से वे बेद और वर्धमान, बुद्ध और बौद्ध तथा बाल्मीकि और व्यास की करुणा को हृदयंगम कर अपने साहित्य में उसकी व्यापक और

उदात्त अभिव्यक्ति कर सके । तीसरे, परम्परागत धन-वैभव और तत्कालीन बनारस के धनी वर्ग में प्रचलित उदारता और परिवारगुरुता ने भी उनकी 'हृदयसत्ता का सुन्दर त्य' समझाया । चौथे, सौंदर्य की व्यापक कल्पना, प्रकृति-प्रेम और तद्जनित छायावादी कल्पना-परक रुचि ने भी उनको चिंतक बनाने में सहायता की होगी । पाँचवें, व्यक्तिगत रुप से प्रसाद जी शैवोपासक थे, शिव उनके कुल देवता थे । छठे, अपने विस्तृत और गहन अध्ययन से वे वेद, पुराण, उपनिषद आदि संस्कृत दर्शन, जैन-बौद्ध आदि से लेकर आधुनिक कालीन विकासवाद, साम्यवाद, भौतिकवाद, परमाणुवाद, बुद्धिवाद और परिवर्तनवाद आदि नाना दार्शनिक विचारधाराओं से परिचित हो गये थे । इन्हीं सबके आधार पर 'कामायनी' के दर्शन की अट्टालिका का निर्माण हुआ । प्रमाण है - कामायनी में प्राप्त दर्शन का अंकित रुप ।

कामायनी में दर्शन - 'कामायनी' की कथा, चरित्र, वातावरण आदि मात्र ऐतिहासिक नहीं वरन् रुपकमय हैं जिनका एक छोर है - मनोविज्ञान और दूसरा दर्शन । यह दर्शन कवि प्रसाद का दर्शन है जिसने उनको श्रेष्ठ कवि भी सिद्ध किया है और गहन दार्शनिक भी । ब्राउनिंग गी यह उक्ति 'कामायनी' पर भी सटीक उतरती है कि "When passion and philosophy meet in a single individual, we have a great poet". कामायनी में कवि ने प्रत्यक्ष और परोक्ष अर्थात् स्व-कथनों और चरित्रों, स्थानों, घटनाओं आदि विविध साधनों से अपनी दार्शनिक मान्यताओं को प्रकट किया है । संक्षेप में ये, निम्नांकित हैं -

आनन्दवाद - कामायनी का श्रीगणेश होता 'चिन्ता' से और समाप्ति 'आनंद' से । इस प्रकार प्रो. रमेश चन्द गुप्त (कामायनी : एक दृष्टि) के शब्दों में, कामायनी का 'पहला छोर है चिन्ता और दूसरा आनन्द । इस प्रकार कवि का चरम उद्देश्य है मानव को (मनु या मानव-मन जो) चिन्ता से आनन्द तक ले जाना और इसी रुप में कामायनी के नायक (मनु) का प्राप्य है आनन्द । यही उसका साध्य है ।" इसी भाँति डा. नगेन्द्र (कामायनी के अध्ययन की समस्यायें) का मत है, "कामायनी की प्रमुख घटना है मनु की मानसरोवर-यात्रा जिसका प्रतीकार्थ है मानव-मन की आनन्द साध°आ । "तद्नुसार कामायनी में निहित जीवन-दर्शन का चरम साध।य हुआ, आनन्द और कामायनी का मूल प्रतिपाद्य हुआ आनन्दवाद ।"

यह शब्द - आनन्द या आनन्दवाद-प्रसाद जी ने शैवागमों के प्रत्यभिज्ञा-दर्शन से लिया है । इसके अनुसार 'शिवशक्ति मथ्य-मथ्थक-भाव से परस्पर सहारित हो इच्छा, कर्म और ज्ञान तीनों में सामरस्य लाकर आनन्द उत्पन्न करते हैं ।' प्रसाद जी ने इसको व्यावहारिक रुप देते हुए बताया है कि उनकी समरसता में शक्ति-विरोधी वृत्तियों की भी समरसता है । 'दर्शन' सर्ग में शिव का ताँडव इसी का प्रमाण है ।

प्रश्न उठता है - कवि ने इसको क्यों अपनाया ? उत्तर स्वयं कवि ने 'काम' सर्ग में दे दिया है कि -

सब कहते हैं 'खोलो खोलो
छवि देखूँगा जीवन-धन की',
आवरण स्वयं बनते जाते
है भीड़ लग रही दर्शन की ।"

दूसरे, आज के बुद्धिवाद में फंसे मानव को प्रताड़ित होते देख उसका मार्गदर्शन करना भी कवि का इष्ट रहा है । फलतः आधुनिक युग का आर्तस्वर भी यहाँ मुखर है ।

प्रसाद जी तटस्थ आनन्दवाद के समर्थक हैं । आर्यों के इन्द्र के 'आत्मवाद' से श्रुति-निगम, पुराण, जैन-बौद्ध, सिद्ध, नाथ, कबीर आदि तक यह सभी में विकसित रहा मिलता है । डा. नगेन्द्र ने ठीक ही कहा है कि "कामायनी में आनन्द के जिस रुप की प्रतिष्ठा है, वह स्पष्टतः आत्मस्थ है । वह अन्तर्मुख आनन्द या आत्मानन्द है - बाह्य, गोचर, विश्वरुप में प्रसरित आनन्द नहीं । इच्छा, क्रिया और ज्ञान के सामंजस्य से उत्पन्न मनःस्थिति इसकी भूमिका है।" 'रहस्य' और 'आनन्द' सर्गों में कवि ने इसी को स्वीकृति दी है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसका रुप-चित्रण करते हुए बताया है कि "कामायनी में आनन्दवाद की प्रतिष्ठा दार्शनिकता के ऊपरी आभास के साथ कल्पना की मधुमती भूमिका बनाकर की है । यह आनन्दवाद बल्लभाचार्य के 'काम' या आनन्द के ढंग का न होकर तांत्रिकों और योगियों की अंतर्भूत पद्धति पर है।" तैत्तरीय उपनिषद, मुंडकोपनिषद, स्वच्छन्दसार, गीता और आधुनिक मनोविज्ञान से पुष्ट यह आनन्दवाद आत्मा का ही स्वरुप है । रुपकानुसार मनु (मन) श्रद्धारहित होकर इड़ा (बुद्धि) की ओर आकर्षित होते हैं । फलतः

उनमें भेदत्व बढ़ता है । कारण ? बुद्धि क्षमता-प्रदाता है जिसका उपयोग तो श्रद्धा भाव की प्रेरणा से ही सभव है । तात्पर्य यही है कि आनन्द की प्राप्ति कोरी बुद्धि से असम्भव है । 'कामायनी' के 'रहस्य' और 'आनन्द' सर्गों में श्रद्धा ही मनु (मन) को आनन्दमय बनाती है ।

समरसता - साधारणतः दो विरोदी वस्तुओं के द्वन्द्व का अभाव ही समरसता है । यह भी शैवागमों का एक पारिभाषिक शब्द है । यहाँ पर शिवत्व योजना के अन्तर्गत आवश्यक तेरह पदार्थों के ज्ञान में से यह एक है । गीता में इसी को 'समत्व भावना', योगियों में निर्विशेष स्थिति' शैवों में 'चिदानन्द-प्राप्ति' तथा अन्य दर्शनों में 'सर्वभाव या परम भाव' कहा गया है ।

'कामायनी' में कवि ने इसको व्यावहारिक रुप प्रदान किया है । उसके अनुसार मानव (मनु) भ्रमवश आत्मा पर स्थूल का आरोप करने के कारण उसके वास्तविक स्वरुप आनन्द को विस्मृत कर देता है । श्रद्धा-भाव ही मानव को इस स्थिति का भान कराता है और बताता है कि आनन्द-प्राप्ति के लिये मानसिक क्रियाओं में रामरस्य स्थापित करना चाहिये । यह सामरस्य द्वन्द्व मिटने पर ही सम्भव है । द्वन्द्व अभेद दृष्टि उत्पन्न होने पर ही मिट सकता है अर्थात् हम प्रत्येक वस्तु में शिवत्व के दर्शन करें और हमारी अन्तर्वाह्य वृत्तियों में समन्वय हो जाये तभी मिटकर अभेद या समरसता की स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है ।

कामायनी में समरसता की सूत्रधार एकमात्र श्रद्धा है । वहीं वहाँ पर समरसता के वीन रुपों व्यक्ति की समरसता, समाज की समरसता, प्रकृति और पुरुष की समरसता - का - दिगर्दर्शन कराती है । व्यक्ति की समरसता श्रद्धा के जीवन में है । समाज-समरसता के अभाव में ही सारस्वत प्रदेश में विप्लव और 'संघर्ष' होता है । प्रकृति और पुरुष की समरसता मुखर हुयी है - 'आनन्द' सर्ग में, श्रद्धा-मनु की समरस स्थिति में । 'रहस' सर्ग में कर्म, ज्ञान और इच्छा की समरसता के द्वारा श्रद्धा द्वारा जीवन को आनन्दमय बनाने का मूल-मंत्र बताया गया है । श्री रामलाल सिंह ने ठीक ही कहा है, "कामायनी के मूल में आनन्द की साधना का प्रधान तत्व श्रद्धा है और सामरस्य उसका साधन । यदि सामरस्य प्रयत्न है तो आनन्द साध्य ।" समरसता की स्थिति को स्वयं कवि ने, मनु की निम्न पंक्तियों में, स्पष्ट कर दिया है -

"हम अन्य न और कुटुम्बी, हम केवल एक हमी हैं ।
तुम सब मेरे अवयव हो जिसमें कुछ नहीं कमी है ।
शापित न वहाँ है कोई तापित पापी न यहाँ है,
जीवन-वसुधा समनल है जो कि जहाँ है ।"

निःसन्देह, डा. वेदज्ञ आर्य (कामायनी की पारिभाषिक शब्दावली) के शब्दों में यह कहना अक्षरशः सत्य है, कि, 'कामायनी में एक ओर समरसता का आध्यात्मिक रुप शैवागमों के आधार पर प्रतिपादित हुआ है और दूसरी ओर उसका लौकिक या व्यावहारिक रुप वैदिक वाङ्मय तथा गीता के आधार पर चित्रित हुआ है । 'वस्तुतः प्रसाद जी की समरसता-विषयक यह मौलिक उद्भावना दर्शन एवं साहित्य के लिये अपूर्व देन है ।

श्रद्धा - श्रद्धा की व्युत्पत्ति श्रत् + था (हृद् + था) है जिसका अर्थ है - जिसमें हृदय स्थापित किया जा सके । अतएव श्रद्धा हृदय के सभी भावों की प्रतीक है । यास्काचार्य (निरुक्त : ३/६ दैवतकांड) ने कहा है - "श्रद्धा श्रद्धानात् (सत्यमस्यांधीयत इति श्रद्धा)" अर्थात् सत्य को धारण करने वाली वस्तु श्रद्धा है ।' यहाँ पर यह बात भी द्रष्टव्य है कि 'सत्य को धारण करना, उसका अन्वेषण करना, उसका साक्षात्कार करना आदि ही दर्शन के विषय हैं ।' कामायनीकार ने श्रद्धा को इसी रुप में ग्रहण किया यथा निम्नांकित उद्धरण देखिये -

i) "कुतूहल खोज रहा था व्यस्त, हृदयसत्ता का सुन्दर सत्य"
ii) "विषमता की पीड़ा से व्यस्त हो रहा स्पन्दित विश्व महान
यही दुख सुख विकास का सत्य यही भूमा का मधुमय दान ।"
iii) यह क्या ! श्रद्धे ! बस तू ले चल
उन चरणों तक, दे निज सम्बल ।"

'कामायनी' में श्रद्धा का केवल सात्विक रुप अंकित है । तंत्रों के आधार पर, प्रसाद जी ने भी उसको 'कामगोत्रजा' अर्थात् सृष्टि-विकास का मूल कारण माना है । श्रद्धा द्वारा त्रिपुरों को मिलाने की घटना भी तत्रों की देन है- 'त्रिपुरानन्तशक्त्यैक्य रुपिणी सर्वसाक्षिणी ।" चरित्र का मूलाधार भी श्रद्धा है क्योंकि चरित्र का निर्माण प्रेरणा से और प्रेरणा श्रद्धा या हृदय से ही होती है

"छाया है विश्वास की श्रद्धा सरिता कूल ।" इस प्रकार डा. वेदज्ञ आर्य के शब्दों में, "कामायनी में प्रसाद जी ने श्रद्धा के दार्शनिक अर्थ के आधार पर प्रायः सभी रूपों को ग्रहण किया है और तदनुसार उसका चित्रण करके वर्तमान युग में भी उसकी दीर्घ परम्परा को सुरक्षित और अक्षुण्ण रखा है ।"

आत्मवाद - "एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़" के अनुसार प्रसाद जी भी सर्वत्र अपने को देखते हैं । वे शिवतत्व और शक्तित्व दोनों को ही मानते हैं यद्यपि दूसरा तत्व अर्थात् शक्तित्व भी प्रथम अर्थात् शिवतत्व का ही व्यक्त रुप है। इन दोनों की सत्ता एक दूसरे पर निर्भर है । तत्वातीत अवस्था में दोनों का सामरस्य हो जाता है । यही शिवशक्ति का, शैवागम के अनुसार, सामरस्य है । शैव इसी को "परमशिव" और शाक्त 'पराशक्ति' कहते हैं । कामायनीकार ने उसको पराशक्ति के रुप में ही अंकित किया है । शक्ति अद्वैतवाद के पोषक होने के कारण प्रसाद जी इदं में अहं को लीन करने की साधना को स्वीकार करते है ।

माया - शैव ग्रन्थों में प्राप्त 'माया' शब्द की व्युत्पत्ति है - मा + या । 'मा' का अर्थ है - प्रलय में जगत का अधिष्ठान और 'या' का अर्थ है - सुष्टि में होने वाला पदार्थ । माया की कल्पना प्रसाद जी ने तंत्रों से ग्रहण की है । इसके अनुसार माया शक्ति से अभिन्न और विश्व का मूल कारण है । यह ईश्वर की विश्व--सृजन-शक्ति है जो प्रत्येक जीव को अपने-अपने कार्यों में संलग्न रखती है । 'श्रद्धा' में इसका शुद्ध रुप मिलता है यथा -

"यह लीला जिसकी विकास चली ।
वह मूल शक्ति थी प्रेम कला ।।
उसका संदेश सुनाने को ।
संस्कृति में आई वह अमला ।।"

ईश्वर - कामायनीकार के अनुसार ईश्वर अनन्त रमणीय, अनिवार्य, विराट और विश्व-देव है । यह समस्त विश्व में प्याप्त है और शिव ही है । इस प्रकार कवि ने कामायनी में अद्वैतवाद का ही समर्थन किया है ।

नियति - शैव दर्शन में मान्य छत्तीस तत्वों में से एक तत्व है - नियति जो 'जीव की स्यातत्र्य शक्ति का तिरस्कार करती है ।' यहा माया की संतति है।

शाब्दिक व्युत्पत्ति की दृष्टि से यह 'यम' धातु से निर्मित है ।' इसका शब्दार्थ है - वह शक्ति जिससे आत्मा निबद्ध होती है - "नियति : नियम्यते आत्मा अनयेति" (हलायुधकोश) । शैवागम की भाँति, 'कामायनी' में भी यह नियामिका शक्ति है जिसको साधारणतः भाग्य, भवितव्यता आदि भी कहा गया है । 'कामायनी' में इसके तीनों रुप-नियामिका, नियोजिका एवं निरोधिका-मिलते हैं तथा -

i) "विश्व बँधा है एक नियम से"

ii) "कातरता से भरी निराशा देख नियति पथ बनी वहीं ।"

iii) "नियति चलाती कर्म चक्र यह
तृष्णा जीवन ममत्व वासना ।"

सच में, डा. वेदज्ञ आर्य के शब्दों में, "प्रसाद जी का नियति के विषय में व्यक्तिगत अनुभव तथा शास्त्रानुशींलन अत्यन्त विस्तृत और गम्भीर था ।' 'वह उक्त तीनों की पृथक्-पृथक् शक्ति के रुप में अभिव्यक्त हुई है ।'

शिव - प्रसाद जी शैव थे और शैवागम के अध्येता । शैवागम में शिव के पाँच रुप मान्य हैं - संहारक, सृष्टा, मायायोगी दिगम्बर, मंत्रविद् ऋषि तथा नटराज । 'कामायनी' में कवि ने शिव के इन पाँचों रुपों को ही अभिव्यक्त किया है, यथा -

1) संहारक - "प्रकृति त्रस्त थी, भूतनाथ ने नृत्य विकम्पिक कर अपना, उधर उठाया, भूत सृष्टि सब होने जाती थी सपना ।"

2) सृष्टि - "अखिल विश्व का पीते हो विष, सृष्टि जियेगी फिर से ।"

3) मायायोगी दिगम्बर - "अचल अनंत नील लहरों पर बैठे देव ।"

4) मंत्रविद ऋषि - "वह चन्द्र किरीट रजत नग स्पन्दित-सा पुरुष पुरातन; देखता मानसी गौरी लहरों का कोमल नर्तन ।"

5) नटराज - "अर्न्तनिनाद ध्वनि से पूरित, थी शून्य भेदिनी सत्ता चित्; नटराज स्वयं थे नृत्य निरत, था अंतरिक्ष प्रहसित मुखरित ।"

सात ही साथ शिव का निवास (कैलाश), वाहन (वृषभ) शक्ति (गौरी) आदि का अंकन भी कवि ने स्थान-स्थान पर किया है ।

आत्मा - कामायनी में, शैवागम की मान्यता के अनुसार ही, आत्मा के लिये चिति, महाचिति, चेतनता आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है । ग्रन्थ के अन्त तक आते-आते तो नायक-नायिका भी इसी के अनुकूल शिव-शक्ति रुप हो जाते हैं । यहाँ पर आत्मा ही परम तत्व (शिव) है जो अपनी इच्छा से शिव का निर्माण करती हैं, यथा -

"अपने दुख-सुख से पुलकित, यह मूर्त विश्व सचराचर,
चिति का विराट वपु मंगल, यह सत्य सतत चिर सुन्दर ।"

जीव - शैवागम में जीव को नाना बन्धनों में बद्ध माना गया है । ये बंधन दार्शनिक शब्दावली में 'कंचुक' कहलाते हैं और छः हैं - काल, कला, नियति, राग, विद्या और माया । इनसे बद्ध होकर जीव भटकता रहता है और नाना कष्ट भोगता है । 'कामायनी' में मनु इसी जीव-रुप में चित्रित किये गये मिलते हैं । इस सम्बन्ध में प्रो. रमेशचन्द्र गुप्त ने ठीक ही कहा है, "जीव के प्रतीक-रुप में मनु हमें प्रत्यभिज्ञा तीन भूलों और छः कंचुकों से आवृत स्थिति है । कामायनी के पूर्वार्ध में मनु को इसी रुप में अंकित किया गया है । वे 'निर्वेद' सर्ग तक भेद बुद्धि के प्राधान्य के कारण शाक्त स्थिति में और तदुपरांत केवल अभेद-भावना के कारण शांभुव स्थिति में आते हैं । यहाँ वे त्रिक् दर्शन के अनुसार जीव की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं को पार कर तुरीयावस्था में पहुंच जाते हैं और इसके उपरांत उनका प्रारम्भिक जीवन- अर्थात् ईर्ष्या सर्ग तक - 'सकल' है, यहाँ से निर्वेद तक 'प्रलयाकल' है । दर्शन सर्ग की अन्तिम स्थिति 'विज्ञानकाल' की स्थिति है और रहस्य सर्ग के अन्त से उनकी जीवन-स्थिति 'शुद्ध' के अन्तर्गत परिगणित की जायेगी ।"

जगत् (विश्व प्रपंच) - कामायनी के पूर्वार्ध में अवसादमना मनु जगत् की निस्सारता, विवश स्थिति, दुःखमयता आदि विषयक उद्‌गार प्रकट करते हैं। आवृतावस्था में होने से वे दर्शन के सिद्धांत पक्ष में नहीं आते । सैद्धांतिक दर्शन का श्रीगणेश 'कामायनी' में 'श्रद्धा' सर्ग से होता है जहाँ श्रद्धा-मनु-संवाद में जगत् और विश्व-प्रपंच विषयक धारणाओं को मुखर किया गया है । प्रसाद जी का जगत् "चिति का विराट वपु मंगल, यह 'सत्य सतत चिर सुन्दर" तथा 'विश्व का उन्मीलन अभिराम' है जिसमें 'सब अनुरक्त होते हैं' । 'दर्शन सर्ग' में भी 'यह लोचन-गोचर सकल लोक' अन्तर्गत जगत् को शैव सिद्धातानुसार ही अंकित किया गया है ।

जहाँ तक प्रश्न है - जगत् या विश्वप्रपंच का, शैव-दर्शन के अनुसार 'सृष्टि, विकास हेतु शिव-शक्तियो में आकुंचन होने पर पुष्य या अणुओं की उद्‌भावना होती है । इनको छत्तीस तत्वों के रुप में गिता जाता है' 'कामायनी' में ये सभी तत्व विवेचित हैं । प्रो. रमेशचन्द्र गुप्त ने इनके विषय में ठीक ही कहा है, "माया के साथ काल, नियति, कला, विद्या और राग ये पाँच तत्व मिलकर षटकंचुक कहलाते हैं । रहस्य सर्ग में मनु इनसे मुक्त होते हुये आगे बढ़ते हैं। शब्द, स्पर्श, रस, रुप, गंध इन पांच तन्मात्राओं और नानिका, जिह्वा, चक्षु, त्वक् और श्रवण - इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों का भावलोक के वर्णन में उल्लेख हुआ है । कर्मलोक के वर्णन के प्रसंग में वाक् से उपस्थ तक की पाँच कर्मेन्द्रियों (वाक्, पाणि, पाद, वायु, उपस्थ) का उल्लेख है । "पाँच भौतिक तत्वों - आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी का विवेचन आशा सर्ग में देखा जा सकता है ।"

अन्य मान्यतायें - वैयक्तिक जीवन की भाँति 'कामायनी' में भी प्रसाद जी मुख्यतः शैवागम का अनुकरण करते हैं । इसके अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रन्थ में उन्होंने कुछ अन्य दार्शनिक मान्यताओं का भी उल्लेख किया है । ये मान्यतायें कुछ तो परम्परा रुप में आयी है और कुछ युग-प्रभाव के फलस्वरुप । बौद्ध दर्शन के दुःखवाद, क्षणिकवाद, और शून्यवाद, जैन दर्शन का अहिंसावाद, डार्विन का विकासवाद और कार्लमार्क्स का 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' एवं आधुनिक युग का बुद्धिवाद आदि ऐसे ही कुछ उदाहरण हैं । इनमें से भौतिकवाद और बुद्धिवाद क्रमशः देव-संस्कृति और सारस्वत-प्रजा के विरोध एवं इड़ा के माध्यम से अभिव्यक्त हुए हैं और कवि ने इनका प्रायः विरोध ही किया है । कुछ उदाहरण भी देखिये -

दुःखवाद - "वे सब डूबे, डूबा उनका विभव, बन गया पारावार,
उमड़ रहा है देव-सुखों पर जलधि का नाद अपार ।"

क्षणिकवाद - "तुच्छ नहीं है अपना सुख भी, श्रद्धे वह भी कुछ है,
दो दिन के इस जीवन का तो वही चरम सब कुछ है ।"

शून्यवाद - "हंस पड़ा गनन वह शून्य लोक,
जिसके भीतर बस कर उजड़े कितने ही जीवन-मरण शोक ।"

कासवाद - "वह नीड़ मनोहर कृतियों का, यह विश्व-कर्म रंग-स्थल है,
है परम्परा लग रही यही यहाँ ठहरा जिसमें जितना बल है ।"

प्रसाद जी के दर्शन में सर्वाधिक शक्तिशाली प्रेरक स्त्रोत 'शैवागम दर्शन' रहा है और उनकी अधिकांश दार्शनिक मान्यतायें उसी से ग्रहीत हैं । 'कामायनी' में भी अधिकांशतः यही छाया रहा है और इसी के माध्यम से कवि ने अपने रहस्य-भाव को मुखर किया है । साथ-ही-साथ अन्य दार्शनिक मान्यताओं और विचारधाराओं को भी उसने पक्ष-विपक्ष की दृष्टि से देखा-परखा और अंकित किया है । परिणाम ? 'कामायनी' काव्य-कृति होने के साथ-साथ दर्शन-बाहुल्य से भी ओत-प्रोत हो गई है । सच तो यह है कि प्रसाद जी ने "दर्शन से जीवन को देखा है और जीवन से दर्शन को । अतएव वे कामायनी की दार्शनिक पीठिका पर मानवजीवन का आनन्दपूर्ण भवन-निर्माण करने में सफल-एकदम सफल हुए हैं ।" इतना ही नहीं वरन् "कामायनी आगम ग्रन्थ" बन गया है ।

21.7 सहायक पुस्तकें

1 जयशंकर प्रसाद : नन्ददुलारे वाजपेयी
2 साहित्यिक निबन्ध : रामनाथ शर्मा
3 कामायनी का मूल्यांकन : गौरी शंकर

NOTES

इकाई 22
कामायनी का रूपकत्व और प्रकृति - चित्रण

इकाई की रूप रेखा

22.0 उद्देश्य

22.1 प्रस्तावना

22.1 कामायनी का रूपकत्तव

- 22.2.1 कथा तत्व में
- 22.2.2 चरित्र तत्व में
- 22.2.4 वातावरण तत्व में
- 22.2.3 उद्देश्य तत्व में
- 22.2.5 शिल्प तत्व में

22.3 कुछ आरोप और समाधान

22.4 उपसहार

22.5 कामायनी का प्रकृति-चित्रण

- 22.5.1 आलम्बन रूप में
- 22.5.2 उद्दीपन रूप में
- 22.5.3 मानवीकरण रूप में
- 22.5.4 अलंकार योजना के रूप में
- 22.5.5 प्रतीक रूप में
- 22.5.6 रहस्य-भावना के रूप में
- 22.5.7 उपदेश-ग्रहण के रूप में
- 22.5.8 वातावतण या पृष्ठभूमि रूप में

22.6 निष्कर्ष

22.7 बोध प्रश्न

22.8 नमूने का उत्तर

22.9 सहायक पुस्तकें

22.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में कामायनी के रूपकत्व और प्रकृति चित्रण का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- कामायनी के रूपकत्व को समझ सकेंगे।
- कथा तत्व एवं चारित्रिक दृष्टि से रूपकता का निरूपण कर सकेंगे।
- वातावरण एवं शिल्प की दृष्टि से रूपकता को प्रस्तुत कर सकेंगे।
- कामायनी का प्रकृति चित्रण कर सकेंगे।
- आलंबन और उद्धीपन के रूप में प्रकृति चित्रण को समझ सकेंगे।
- मानवीकरण के रूप में प्रकृति चित्रण को जान सकेंगे।
- वातावरण निरूपण के लिए प्रकृती का क्या योगदान है इस विषय को जान सकेंगे।

22.1 प्रस्तावना

काव्य-जगत् में वैदिक साहित्य से लेकर अद्यतन रुपक-काव्य की एक सुदीर्घ श्रृंखला है । आधुनिक काल मं आकर इस काव्य-रुप को सर्वाधिक बल मिला - छायावादी युग में आरोपण वृत्ति की प्रमुखता होने के कारण छायावादी काव्य में काव्य के भाव और शिल्प दोनों ही पक्षों में रुपकत्व का समावेश अधिकाधिक किया गया । इसी का सर्वोत्तम प्रमाण है - कविवर जयशंकर ठहराया है । डा. शम्भूनाथ सिंह (हिन्दी महाकाव्य का स्वरुप विकास) ने ठीक ही कहा है कि "रुपक कथा काव्य (एलेगरी) वह कथात्मक प्रबन्ध है जिसमें प्रस्तुत कथा के भीतर कोई अन्य अप्रस्तुत कथा भी अन्तःसलिला की भाँति छिपी रहती है "जिसमें पात्र तो यथार्थ मानव होते है। उसमें कवि पात्रों के जीवन का ऐसा मनोवैज्ञानिक और यथार्थ चित्र उपस्थित करता है और ऐसी घटनाओं और परिस्थितियों का चुनाव करता है कि पूरी कथा मानव-जीवन से सम्बन्धित किसी सूक्ष्म सत्य का महत्वपूर्ण घटना की ओर संकेत करती प्रतीत होती है । यह संकेत पूरी कथा के समन्बित प्रभाव में अधिक प्रतिफलित होता है, "आधुनिक कवियों में प्रसाद की 'कामायनी' भी रुपक कथात्मक महाकाव्य ही है ।" प्रमाण है कामायनी एक उपलब्ध रुपकत्व (प्रतीकात्मक) ।

22.2 कामायनी का रूपकत्व -

श्री जयशंकर प्रसाद - ने (कामायनी : आमुख में) स्वयं ही स्पष्टतः घोषित किया है, "सत्य मिथ्या से अधिक विचित्र होता है । आदिम-युग के मनुष्यों के प्रत्येक दल ने जन्मोत्सव के अरुणोदय में जो भावपूर्ण इतिवृत्त संग्रहीत किये थे, उन्हें आज गाथा या पौराणिक उपाख्यान कहकर अलग कर दिया जाता है ·"तथ्य संग्रहकारिणी तर्क बुद्धि को ऐसी घटनाओं में रुपक का आरोप कर लेने की सुविधा हो जाती है ।" सच तो यह है कि रुपक के सहारे ही ऐसी घटना कथायें अनन्त काल तक जन-मानस में अपनी याद बनाये रखती हैं । आदि मानव मनु और जल-प्लावन की कथा ऐसी ही एक कथा है जो कामायनी का भी मूल वर्ण्य विषय बनी है । ध्यान से देखें तो कथा-घटना, चरित्र, उद्देश्य, वातावरण और शिल्पादि सभी साधनों से कवि ने इस कथा को रुपकमयी बनाकर अंकित किया है ।

22.2.1 कथा तत्व में - कामायनी की मूल इतिहास-सिद्ध कथा क्या है - मनु-श्रद्धा की प्रलयोपरान्त की कथा । इसके विषय में प्रसाद जी ने कहा है, "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रुपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है । इसीलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं । मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष, हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः मनु और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है ।" इन्हीं सबके आधार पर 'कामायनी' की कथा-सृष्टि हुई है । हाँ, कामायनी कथा श्रृंखला मिलाने के लिए कहीं-कहीं थोड़ी-बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार मैं नहीं छोड़ सका हूँ ।" कहना न होगा कि इस सांकेतिकतामय आधारों और कल्पना-अधिकार के प्रयोग ने कामायनी की कथा को आद्योपांत रुपकमयी बना दिया है । व्यक्त रुप से यह कथा आदिम पुरुष मनु और उनकी सहचरी श्रद्धा के संयोग से मानव-सृष्टि विकास की कथा है जिसमें दार्शनिक-मनोवैज्ञानिक रुपक भी सक्रिय है । डा. नगेन्द्र (कामायनी के अध्ययन की समस्यायें) के शब्दों में, "अहंकार की क्लेशमयी स्थिति से समरसता की आनन्दमयी स्थिति तक, मनोमय कोश से आनन्दमय कोश तक जीव का विकास

अप्रस्तुत पक्ष मनोवैज्ञानिक-दार्शनिक है और इस प्रकार दोनों पक्षों में निकट सम्बन्ध है जो इस कथा की एक विशेषता है ।"

अब आइये घटनाओं के रुपकत्व पर । प्रमुख घटनायें हैं - जल प्लावन, मनु-श्रद्धा-मिलन, श्रद्धा-परित्याग, इड़ा-सम्पर्क और सारस्वत प्रदेश का पुनरुद्धार, मनु की हिमालय-यात्रा और समरस स्थिति को प्राप्त करना । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जल-प्लावन मानव-मन-स्थित भावों का उल्लेख है, मनु-श्रद्धा-मिलन, मन में श्रद्धा भाव का उदय है और श्रद्धा परित्याग-अहंकार वृत्ति से प्रेरित-परिचालित मन का श्रद्धा-भाव से रहित होना । इड़ा सम्पर्क बुद्धिवाद का सम्पर्क है और सारस्वत प्रदेश का पुनरुद्धार मन की भौतिक ऐ वर्य-प्राप्ति का प्रयत्न । हिमालय-यात्रा भूत भावनाओं की ओर गमन और समरस स्थिति मन का आनन्दावस्था को प्राप्त करना है । दार्शनिक शब्दावली में मनु जीव के प्रतीक हैं जो प्रारम्भ में मनोमय कोशस्थ हैं । रागात्मिका वृत्ति के सहयोग से वह कर्मरत होता है किन्तु निर्विकल्प होने से इस वृत्ति (श्रद्धा) को ग्रहण नहीं कर पाता । फलतः उसमें काम, वासना, अहंकारादि का जन्म होता है और कर्मपथ की बाधाओं को देखकर ईर्ष्यातुर हो उठता है । उसकी अतृप्ति उसको बुद्धि की ओर आकर्षित करती है किन्तु उस पर अबाध अधिकार के असफल प्रयत्न संघर्ष को जन्म देते हैं । भौतिकता की निस्सारता निर्वेद स्थिति को उतृपन्न करती है और जीव (मनु) पुनः आनन्द-खोज में बढ़ जाता है । श्रद्धा अथवा राग-वृत्ति के ही सहारे रहस्य का दर्शन होता है और आनन्दकोश की स्थिति प्राप्त होती है । इस प्रकार डा. नगेन्द्र के शब्दों में, "कामायनी निस्सदेह ही रुपक है । प्रसाद जी ने कथा के मूल तत्वो को ऐतिहासिक मानते हुए उनके आधार पर ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना का उपक्रम किया । किन्तु कथा का साँकेतिक रुप उनके मन में आरम्भ से अन्त तक वर्तमान था ।"

22.2.2 चरित्र तत्व में - कामायनी के प्रमुख चरित्र हैं - मनु, श्रद्धा, और इड़ा जिसके सम्बन्ध में स्वयं कवि ने कहा है कि, 'यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रुपक है तो भी बड़ा भावमय श्लाघ्य है । यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है ।" कामायनी के मनु मन औरजीव के प्रतीक भी हैं तथा श्रद्धा-भाव

और शिव-शक्ति की । इसी भाँति इड़ा बुद्धि की । इतना ही नहीं वरन् श्री शिवदान सिंह चौहान (काव्यधारा) के शब्दों में, "मनु आज के आत्मचेतन व्यक्तिवादी व्यक्ति के प्रतीक हैं । इड़ा आधुनिक पूँजीवादी समाज के वर्ग-भेद और शोषण की मान्यताओं पर आधारित बुद्धि तत्व की प्रतीक है और श्रद्धा मनुष्य की सहज भावनाओं नैतिक मूल्यों और सौहार्द्रता से युक्त मानव-हृदय के आस्थाशील तत्व की प्रती है ।" कहा तो यहाँ तक गया है कि "जो मनु और कामायनी हैं, वही आधुनिक पुरुष और नारी भी हैं, यही नहीं शाश्वत पुरुषत्व और नारीत्व भी वही हैं ।"

कामावनी के गौण पात्र हैं - मानव, आकुलि-किलात, देव, काम, लज्जा, श्रद्धा-पशु, वृषभ आदि । मानव नवमानव का आकुलि-किलात आसुरी वृत्तियों के, देव इन्द्रिय भोगों के, काम और लज्जा मानवीय भावनाओं के, श्रद्धा-पशु अहिंसा अर्थात् सहज जीव दया का और वृषभ धर्म-भाव का प्रतीक है ।

22.2.3 उद्देश्य तत्व में - वाह्य कथा के अनुसार ग्रन्थान्त में मनु कैलाश पर्वत पर पहुंच कर तपस्या लीन होते हैं और चिति अवस्था को प्राप्त करते हैं । वास्तविकता मात्र इतनी ही नहीं है । दार्शनिक रुपक के शब्दों में कहें तो कैलाश पर्वत परम शक्ति शिव का धाम है जहाँ पर शक्तिरुपा श्रद्धा के संकेत पर मनु जीव ब्रह्मलीन होते हैं और मनोवैज्ञानिक शब्दों में मन श्रद्धा के साथ ही आनन्द की स्थिति को प्राप्त करता है । इस प्रकार ग्रन्थ के उद्देश्य में भी कवि ने रुपकत्व को ही प्रकट किया है ।

22.2.4 वातावरण तत्व में - 'कामायनी' में वाह्य वातावरण के साथ-साथ आद्योपांत आन्तरिक वातावरण भी अंकित किया गया है । ध्यान से देखें तो अधिकता भी उसी की है । आधुनिक मनोविज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि बालक में जन्मना शुद्ध चेतना रहती है जो अहं का बोध कराती है । उसमें सर्व प्रथम कौतूहल, जिज्ञासा, भयादि स्वयंम् मनोवृत्तियाँ जन्म लेती हैं । कामायनी के प्रारम्भ में भी मन (मनु) में इन्हीं मनोवृत्तियों का उदय दिखाया गया है । इस सम्बन्ध में प्रो. रमेशचन्द्र गुप्त ने ठीक कहा है, कामायनी का आरम्भ चिन्ता सर्ग से हुआ है । मनु चिंताग्रस्त होकर हिमगिरि के उत्तुंग

शिखर पर बैठे हैं । धीरे-धीरे उनमें आशा का संचार होता है और तदन्तर 'श्रद्धा' वृत्ति का संसर्ग प्राप्त होता है । उनका मन 'काम और वासना' में उलझने लगता है और इस प्रकार 'कर्म' 'ईर्ष्या' और 'संघर्ष' करते हुए वे अन्त में आनन्द को प्राप्त करते हैं । स्पष्ट है कि हमारे मन में उठने वाला भाव-क्रम भी इसी के अनुरुप चलता है ।" इतना ही नहीं वरन् स्थान-वर्णन में भी कवि ने रुपकत्व का समावेश किया है । इस दृष्टि से देखें तो हिमगिरि का उत्तुंग शिखर अहं-बोध का, यज्ञ-कर्म हिंसा का अथवा पाप-कर्म का, सारस्वत नगर प्राणमय कोंस का, मानसरोवर और कैलाश क्रमशः समरसता की अवस्था और आनन्दमय कोश का प्रतीक हैं । इसी भाँति त्रिपुर इच्छा, क्रिया और ज्ञान का प्रतीक है । जहाँ तक प्रश्न है, वस्तु-वर्णन की कोमलता में अबाध भोग स्पष्ट है ।

22.2.5 शिल्प तत्व में - कामायनी के सभी सर्गों का नामकरण और क्रम कथनानुसार होने के साथ-साथ रुपकात्मक भी है और मनोवैज्ञानिक-दार्शनिक रुपक को स्पष्ट करता है । इसी भाँति शब्दावली में भी नाना प्रकार के पारिभाषिक शब्दों का समावेश करके कवि ने रुपकत्व को बल प्रदान किया है । कंचुक, समरस, चिति, महाचिति, ताण्डव, नटराज, पंचतत्व, काल, भैरव, माया आदि दार्शनिक शब्द और चिन्ता, आशा, लज्जा, काम, श्रद्धा, निर्वेद आदि मनोवैज्ञानिक शब्द ऐसे ही कुछ उदाहरण हैं । अलंकार-योजना के अन्तर्गत भी प्रतीकों या रुपकों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया गया मिलता है । श्रद्धा, इड़ा और मनु को सौन्दर्य-अंकन वाले प्रसंगों में भी इनको आसानी से परिलक्षित किया जा सकता है ।

22.3 कुछ आरोप और समाधान -

'कामायनी' में रुपकत्व की स्थिति को सभी विद्वान् एकमत से स्वीकार करते हैं । फिर भी कुछ विद्वानों ने इस पर कुछ आरोप लगाये हैं । प्रमुख आरोप और समाधान निम्नांकित हैं -

1) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास) के अनुसार, "जिस समन्वय का पक्ष कवि ने अन्त में सामने रखा है, उसका निर्वाह रहस्यवाद की प्रवृत्ति के कारण काव्य के भीतर नहीं होने पाया है । पहले कवि ने

कर्म को बुद्धि या ज्ञान की प्रवृत्ति के रुप में दिखाया, फिर अन्त में कर्म और ज्ञान के बिन्दुओं को अलग-अलग रखा ।" इस आरोप का सटीक समाधान डा. नगेन्द्र कर देते हैं - "श्रद्धा केवल भावना नहीं, भाव भी नहीं, वह जीवन की आस्तिक बुद्धि है, विश्वास और आस्था का प्रतीक है । भावलोक तो मात्र भावुकता, केवल इच्छा का प्रतीक है, जबकि श्रद्धा जीवन के अस्तित्व में आस्था अर्थात् विश्वासयुक्त जीवनेच्छा है।" तथा प्रो. रमेशचन्द्र गुप्त के शब्दों में, "वस्तु-रचना की दृष्टि से भी श्रद्धा का इन तीनों (भाव, ज्ञान, क्रिया) से अलग होना आवश्यक था। कामायनी की कथा का उद्देश्य समरसता की प्राप्ति करके चिदानन्दलीन होना है - और वह कार्य मुख्य पात्र के द्वारा ही सम्पादित होना चाहिये था ।"

2) रुपक कथा काव्य के पात्र घटनायें कल्पित होते हैं जबकि कामायनी के प्रमुख पात्र और कथा घटनायें ऐतिहासिक हैं । इस सम्बन्ध में यही कहना पर्याप्त है कि कामायनी के पात्र, कथा और घटनाओं में इतिहास आधार मात्र ही नहीं है कवि ने इनको अधिकांशतः रुपकत्व के द्वारा कल्पनामय भी बना दिया है ।

3) जल-प्लावन और सारस्वत नगर की संहारक घटनायें एक सी हैं । इसी से इनका अन्तमय कोश और प्राणमय कोश का रुपक सटीक नहीं बैठता। इसके उत्तर में दृष्टव्य यह है कि जल-प्लावन का कारण है - विलासाधिक्य और इसमें देव-सृष्टि का पूर्ण विनाश हो जाता है । सारस्वत नगर में ऐसा नहीं है । दूसरे अन्नमय कोश से प्राणमय कोश उच्चस्तरीय है ।

4) मनु और मानव में प्रायः समान रुपकत्व है । यहाँ पर आरोपकर्त्ता भूल गये हैं कि मनु प्रारम्भ से ही पूर्ण और संतुलित नहीं है जबकि मानव श्रद्धा और इड़ा से एक साथ युक्त होकर पूर्ण भी हैं और संतुलित भी । दूसरे, कैलाश-यात्रा से पूर्व ही श्रद्धा द्वारा मानव इड़ा को सौंप दिया जाता है और श्रद्धा के साथ-साथ इड़ा से भी प्रभाव-ग्रहण कर वह पूर्ण और सम्यक् बनता है । तीसरे, मनु पूर्व-सृष्टि के प्रतीक हैं जबकि मानव नव सृष्टि का । अतएव मनु और मानव के रुपक में भी पूर्ण भेद है ।

5) डा. देवराज (छायावाद का पतन) के अनुसार "मनोवैज्ञानिक रुपक के निर्वाह के फेर में प्रसाद जी न तो अपने पात्रों को सुस्पष्ट व्यक्तित्व दे सके हैं और न कथा-प्रवाह की रक्षा कर सके हैं ।" इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम दृष्टव्य बात तो यह है कि 'कामायनी' में आद्योपान्त ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक कथा-घटनाएँ एक साथ चली हैं और वह भी प्रभावशाली रुप में । दूसरे, प्रसाद जी के सभी चरित्र सुस्पष्ट व्यक्तित्व से युक्त हैं और वह भी दोहरे-तीहरे रुप में । जहाँ तक प्रश्न है कथा-प्रवाह का, आन्तरिक कथा-रुपक होने के कारण उसकी गति धीमी होनी स्वाभाविक ही थी ।

22.4 उपसहार

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कामायनी में कथा, चरित्र, वातावरण, उद्देश्य और शिल्प आदि सम्भव साधनों से रुपकत्व का समावेश किया गया है और कवि ने आद्योपांत उसका निर्वाह किया है । कहीं-कहीं उसमें असंगति आ सकती है, आयी भी है किन्तु वह मूल कथा-चरित्रों में विशेष बाधक नहीं बनती इसके अतिरिक्त बाल की खाल निकालने की प्रवृत्ति से किये गये तत्समबन्धी दोषरोपण भी न तो सबल हैं और न अकाट्य । यहाँ पर यह कहना भी अनुचित न होगा कि 'कामायनी' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है जिसमें दोहरे-तीहरे रुपक का काव्य है क्योंकि इसके रुपक में तत्सम्बन्धी सभी आवश्यक लक्षण पूरी-पूरी मात्रा में उपलब्ध होते हैं । सच तो, डा. विश्वम्भर मानव (खड़ी बोली के गौरव-ग्रन्थ) के शब्दों में "कामायनी एक विराट् सामंजस्य की सनातन गाथा है ।"

22.5 कामायनी का प्रकृति-चित्रण

प्रकृति और काव्य - साधारणतः प्रकृति शब्द का प्रयोग स्वभाव, मिजाज और पर-शक्ति के लिये किया जाता है । काव्यादि विधाओं में, डा. रघुवंश (प्रकृति और हिन्दी काव्य) के शब्दों में, "इस धारातल पर प्राणी समूह को छोड़ अन्य समस्त चेतन-अचेतन सृष्टि-प्रसार को प्रकृति" माना जाता है । प्रकृति सदा ही काव्य सृजन की प्रमुख प्रेरणा-स्त्रोत रही है । मानव की

सहचरी होने के साथ-साथ प्रकृति मानव के सौन्दर्य-प्रेम, जगत-अकर्षण और लगाव को सन्तुष्ट करती है । कवि भी इन्हीं से प्रेरित होकर काव्य-सृजन करता है । इसी से, प्रकृति और काव्य का निकट सम्बन्ध है । श्रीमति महादेवी वर्मा ने इस विषय में सत्य कहा है कि "प्रकृति के विविध रुपों के आकर्षण ने मानव की बुद्धि और हृदय को कितना परिष्कार और विस्तार दिया है, इसका लेखा-जोखा करने पर मनुष्य प्रकृति का सबसे अधिक ऋणी ठहरेगा । वस्तुतः संस्कारमय क्रम में मानव-जाति का भाव-जगत् ही नहीं, उनके चिन्तन की दिशायें भी प्रकृति के विविध रुपात्मक परिचय द्वारा तथा उससे उत्पन्न अनुभूतियों से प्रभावित हैं ।"

प्रसाद जी और प्रकृति-प्रियता - द्विवेदी-काल के अन्तिम चरण से ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव-प्रयासों से प्रकृति वर्णन कविकर्म का अभिन्न अंग बन चुका था । छायावादी युग तक आते-आते तो यह वृत्ति और भी अधिक मनोयोग से अपनायी जाने लगी । प्रसाद जी स्वयं तो छायावादी थे ही, प्रकृति-प्रेमी थी थे । अतएव उनकी रचनाओं - विशेषतः काव्य-रचनाओं में प्रकृति का चित्रण होना स्वाभाविक ही है । निःसन्देह कामायनी भी इसका अपवाद नहीं है वरन् महाकाव्य होने के नाते तथा अन्य कई कारणों से इसमें तो प्रकृति को और भी अधिक महत्व दिया गया है । कामायनी छायावादी युग की सर्वोत्तम और कवि प्रसाद की प्रौढ़कालीन (सन् १९३६) अन्तिम काव्य-कृति है । महाकाव्य-विधा मे होने से भी इसमें प्रकृति-चित्रण अनिवार्य था । तीसरे, कथा-दृष्टि से भी इसमें प्रकृति का महत्वपूर्ण स्थान था । इन्हीं कारणों से इस ग्रन्थ में प्रकृति का अंकन बहुतायत से किया गया मिलता है । प्रमाण है - 'कामायनी काव्य का प्रकृति-चित्रण।

कामायनी काव्य का प्रारम्भ अशान्त कालरात्रि से और समाप्ति शिव-शान्त रात्रि पर होती है । सम्पूर्ण काव्य में भी संध्या या रात्रि की प्रमुखता है। प्रश्न उठता है कि प्रसाद ई को क्या संध्या-रात्रि विशेष प्रिया थी ? समाधान-स्वरुप डाँ. विमल कुमार जैन ('कामायनी-चिन्तन' में) कहते हैं, 'इस प्रश्न का समाधान मुझे दो रुपों में दृष्टिगत होता है । एक तो उनकी यौहैनकालीन एक घटना में दृष्टिगत होता है जबकि वे मधुर चाँदनी रात में अपनी प्रेयसी के

साथ मधुरालाप कर रहे थे परन्तु जैसे ही रस-विभोर हो वे आतुर होकर उसे आलिगनबद्ध करने के लिये आगे बढ़े तो वह खिलखिलाकर भाग गई । "वह मंजुल रात उन्हें जीवन में कभी न भूली और उनके लिये जगत मधुर रात्रिमय ही हो गया ।" दूसरा समाधान यह है कि अज्ञान का अंधकार जीवन में अधिक रहता है तथा ज्ञान का प्रकाश कम, इसलिये संध्या एवं रात्रिगत वर्णन अधिक है ।" शास्त्रीय दृष्टि से भी 'कामायनी' में प्रकृति-चित्रण के विविध रुप, पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं ।

22.5.1 आलम्बन रूप में - काव्य में प्रकृति-चित्रण मुख्यतः दो रुपों में होता है - प्रस्तुत और अप्रस्तुत अथवा परोक्ष रुप में । प्रस्तुत रुप आलम्बन रुप का ही पर्याय है । इसमें भी वह स्फुट और सम्मिश्र नामक दो प्रकार से किया जाता है । प्रथम में प्रकृति का उल्लेख मात्र होता है जबकि सम्मिश्र नामक दूसरे प्रकार में एक परिस्थिति या दृश्य का पूरा चित्रण होता है । इसमें वस्तुओं की संश्लिष्ट योजना द्वारा बिम्ब ग्रहण कराया जाता है । इनके भी तीन रुप हैं - शुद्ध, भावाक्षिप्त और अलकृत । कामायनी में शुद्ध चित्र प्रायः कम हैं, प्रमुखता भावाक्षिप्त रुपों की है । इस रुप में वर्णित प्रकृतिपात्रों के भावानुकूल होकर उनमें तादात्म्य स्थापित करती है, रसमग्न करने में सहायता देती है और दृश्यों को अखण्ड रुप में प्रकट करती है । निःसन्देह प्रसाद जी ने इसके अन्तर्गत प्रकृति के सौम्य और भयंकर दोनों रुप कित किये हैं । निम्न उदाहरण देखिये -

i) सौम्य रुप - "नव कोमल आलोक बिखरता
हिम संसृति पर भर अनुराग;
सित सरोज पर क्रीड़ा करता
जैसे मधुमय पिंग परांग।"

xxx

ii) भयंकर रुप - "दिग्दाहा से धूम उठे, या
जलधर उठे क्षितिज तट के
सघन गगन में भीम प्रकंपन,
झंझा के चलते झटके ।"

22.5.2 उद्दीपन रूप में - कभी-कभी प्रकृति मानव को (अपनी मनःस्थिति के अनुकूल) उद्दीपत करती प्रतीत होती है । मानव उसको अपनी ही भाँति दुःख या सुखी मान उससे तादात्म्य स्थापित करता है । यह प्रकृति का उद्दीपन रुप में किया गया चित्रण है । इस प्रसंग में देखें तो यह बात एकदम सत्य है ही कि 'कामायनी' मानव-वृत्ति की विश्लेषण प्रधान काव्य-कृति है । अतएव इसमें प्रकृति के उद्दीपक चित्रों की बहुलता का होना स्वाभाविक ही है । कारण ? इसी साधन से मानववृत्तियों के प्रभाव और प्रसार में व्यापकता आती है, आश्रय से तादात्म्य-स्थापन सरल हो जाता है तथा रसोत्प्रेरक-स्थिति तक पहुंचने में सुगमता रहती है । प्रकृति का यह उद्दीपन रुप भी दो प्रकार से अंकित किया जाता है - (1) प्रकृति पीछे और उद्दीप्त भाव आगे तथा (2) प्रकृति और भाव अपने स्वरुप को संरक्षित रखते हुए ही भावोद्दीपन में सहायक होते हैं । 'कामायनी' में दूसरे प्रकार की ही प्रमुखता है । इस में भी स्थानगत और समयगत विशेषतायें वर्तमान हैं तथा कहीं-कहीं दृश्य-संशोधन भी किया गया है । प्रकृति के इसी रुप के कुछ दृश्य देखिये -

i) संयोग - "लतिका घूंघट से चितवन की
वह कुसुम दुग्ध सी मधु-धारा,
प्लावित करती मन अजिर रही
था तुच्छ विश्व वैभव सारा ।"

ii) वियोग - "वे सब डूबे, डूबा उनका
विभव, बन गया पारावार,
उमड़ रहा था देव-सुखों पर
दुख-जलधि का नद अपार ।"

22.5.3 मानवीकरण रूप में - इसमें प्रकृति के निर्जीवव तत्वों का अंकन सजीव मानकर किया जाता है । छायावादी काव्य और उसमें भी प्रसाद-काव्य की तो यह सर्वाधिक प्रिय वस्तु है । कामायनी में सागर, रात्रि, संध्या, उषा, नदी, पर्वत आदि नाना प्राकृतिक वस्तुओं का मानवीकरण करके अंकित किया गया है । उदाहरण स्वरुप एक काव्यांश देखिए -

"हंस बड़ा गगन वह शून्य लोक,
जिसके भीतर बस कर उजड़े कितने ही जीवन-मरण-लोक ।"
हंस पड़ी उषा प्राची नभ में, देखकर नर अपना राज-काज
चल पड़ी देखनें वह कौतुक चंचल मलयाचल की बाला
लख लाली प्रकृति कपोलों में गिरता तारा-दल मतवाला ।"

22.5.4 अलंकार योजना के रूप में - कभी-कभी कवि प्रकृतिगत सौंदर्य का उपयोग नायक-नायिका आदि चरित्रों के सौंदर्य को द्विगुणित करने के लिये अलकार रुप में भी करता है । 'कामायनी' में भी कवि ने मनु, श्रद्धा और इड़ा के अन्तर्वाह्य सौन्दर्य अंकन में इस रुप को ग्रहण किया है यथा -

i) मनु - "उसी तपस्वी-से लम्बे, थे
देवदारु दो चार खड़े,
हु हिम-धवल, जैसे पत्थर
बनकर ठिठुरे रहे अड़े ।"

ii) श्रद्धा - "नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अध-खुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ बन बीच गुलाबी रंग ।"

iii) इड़ा - "बिखरी अलकें ज्यों तर्क-जाल
वह विश्व मुकुट-सा उज्जवलतम,
शशिखण्ड-सदृश था स्पष्ट भाल ।"

कहीं-कहीं कवि ने अगोचर भावों को गोचर करने के लिये भी प्रकृति का सहारा लिया है, यथा -

"ओ चिन्ता की पहली रेखा,
अरी विश्व-वन की व्याली,
ज्वालामुखी विस्फोट के भीषण
प्रथम कंप-सी मतवाली ।"

22.5.5 प्रतीक रूप में - प्रतीक रुप में प्रकृति का प्रयोग भाव-व्याख्या, प्रभावोत्पादकता-वृद्धि, अनुभूत-जाग्रति और परोक्ष को प्रत्यक्ष (साकार) करने के लिये किया जाता है । कामायनी में भी कवि ने प्रकृति के नाना उपादानों को इसी रुप में ग्रहण किया है । कांटे, कुसुम, आकाश, उषा, कमल, किरन, क्षितिज, निदाघ, निशीथ, झंझा, अन्धकार, बिजली, मकरन्द, मधु, मलयानिल, वर्षा, शिशिर, सौरभ, हिमालय आदि ऐसे ही कुछ प्राकृतिक प्रतीक हैं । एक उदाहरण देखिए -

'देखे मैंने वे शैल-श्रृंग
अपने जड़ गौरव के प्रतीक वसुधा का कर अभिमान भंग
अपनी समाधि में रहे सुखी, बह जाती हैं नदियाँ अबोध
कुछ श्वेत-बिन्दु उसके लेकर वह सस्मित नयन गत-शोक-क्रोध ।"

कहीं-कहीं कवि ने प्रकृति-विषयक नवीन प्रतीक भी ग्रहण किये हैं । बासी फूल, रजनी के पिछले पहर, मतवाली कोयल और नक्षत्र ऐसे ही कुछ प्रतीक हैं जो क्रमशः म्लान भाव, किशोरावस्था के बाद का समय, हृदय-उल्लास और ज्ञान का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

22.5.6 रहस्य-भावना के रूप में - प्रकृति और उनके विविध दृश्यों में अचेतन रहस्य सत्ता (वृक्ष) की अनुभूति करना ही प्रकृति का रहस्य रुप अंकन करना है । प्रसाद जी की प्रकृति, विशेषतः कामायनी में, चेतन है और शैवधर्मानुसार आनन्द-रुपा और स्पन्दरुपा है । कामायनी के उत्तरार्ध में प्रकृति का अधिकांश वर्णन इसी का परिचायक है । इस रुप में प्रकृति का एक दृश्य देखिए -

"महानील इस परम व्योम में,
अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान
ग्रह नक्षत्र और विद्युतत्कण
किसका करते हैं संधान ।"

22.5.7 उपदेश-ग्रहण के रूप में - कभी-कभी कवि (अथवा चरित्र) प्रकृति के दृश्य-विशेष से किसी जीवन सत्य के उपदेश का उद्‌घाटन करता

है । यही प्रकृति का उपदेश ग्रहण के रुप में अंकन किया जाता है । कामायनी में प्रकृति का इस रुप में अंकन अपेक्षाकृत कम है । कारण ? छायावादी काव्य में इसका अधिक प्रचार नहीं था । निम्न उदाहरण देखिए-

"प्रकृति के यौवन का श्रृंगार
करेंगे कभी न बासी फूल
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र
आह ! उत्सुक है उनकी धूल ।"

x x x

"जीवन निशीथ के अन्धकार
तू घूम रहा अभिलाशषा के नव ज्वलन धूम-सा दुर्निवार
जिसमें अपूर्ण लालसा, कलक, चिंगारी-सी उठती पुकार

22.5.8 वातावतण या पृष्ठभूमि रूप में - 'कामायनी' की समस्त कथा प्रकृति की गोद में घटी है । दूसरे, कवि ने प्रकृति-चित्रण के माध्यम से ही घटना-विकास किया है, आगामी घटनाओं के संकेत दिये हैं और घटना से पूर्व पृष्ठभूमि नप में भी प्रकृति का अंकन किया है । इसी से प्रकृति का इस रुप में अंकन 'कामायनी' में बहुतायत से उपलब्ध है । प्रायः सभी सर्गो का प्रारम्भ और अन्त इसी का परिचायक है । उदाहरणार्थ निम्न काव्यांश देखिए -

"ऊर्ध्व देश उस नील तमस में
स्तब्ध हो रही अचल हिमानी
पथ-थक कर है लीन चतुर्दिक
देख रहा वह गिरि अभिमानी ।"

22.6 निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'कामायनी' में प्रकृति का विशेष महत्व है और इसके नाना रुप नाना प्रकारों से यहाँ अंकित किये गये मिलते हैं ।

सच तो यह है कि 'कामायनी' का क्रोड़ प्रकृति ही है । प्रमाण ? "मनु का चितन प्रकृति में, बिहार तथा क्रीड़ास्थल अलंकृत प्रकृति में, मुक्ति या निर्वाण-बेला भी प्रकृति की रम्य गोद में ही रही है ।" मनु द्वारा प्रकृति को छोड़, सारस्वतः प्रदेश में (नगर सभ्यता के यांत्रिक मोह में) बढ़ते ही प्रकृति विप्लव करती है और मनु प्रकृति-आनन्द की खोज में पुनः प्रकृति की क्रोड़ (हिमालय) में पहुंच जाते हैं । डॉ. रामलाल सिंह (कामायनी-अनुशीलन) ने ठीक ही कहा है, "आनन्द की खोज में विकृति की ओर दौड़ते हुए भ्रांत जगत् को कवि, कामायनी द्वारा, प्रकृति की ओर लौटने का सन्देश दे रहा है ।" कुछ आलोचक तो प्रसाद के इस अतिशय प्रकृति-प्रेम को देख इसको 'कवि-मानव की विकृति की देन' तक बताते हैं । सच तो यह है कि कामायनी में प्रकृति-चित्रण कवि-विचारधारा, छायावादी रचना काल, कथा और पात्र सभी दृष्टियों से आवश्यक था और निःसंदेह कवि ने इस आवश्यकता की सजीव, मूर्त और मार्मिक रुप में पूर्ण किया है । निष्कर्षतः महाकवि निराला (चयन) के शब्दों में कह सकते हैं, "कामायनी में प्रकृति का यह रुप अपना मूल्य रखता है तथा अपने में अत्यन्त गौरवशाली भी है ।"

22.7 बोध प्रश्न

1 कामायनी की रूपक योजना का विश्लेषण कीजिए।

2 कामायनी में चित्रित प्रकृती का विवेचन कीजिए।

22.8 नमूने का उत्तर

1 कामायनी की रूपक योजना का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर - काव्य-जगत् में वैदिक साहित्य से लेकर अद्यतन रुपक-काव्य की एक सुदीर्घ श्रृंखला है । आधुनिक काल मं आकर इस काव्य-रुप को सर्वाधिक बल मिला - छायावादी युग में आरोपण वृत्ति की प्रमुखता होने के कारण छायावादी काव्य में काव्य के भाव और शिल्प दोनों ही पक्षों में रुपकत्व का समावेश अधिकाधिक किया गया । इसी का सर्वोत्तम प्रमाण है - कविवर जयशंकर ठहराया है । डा. शम्भूनाथ सिंह (हिन्दी महाकाव्य का स्वरुप विकास) ने ठीक ही कहा है कि "रुपक कथा काव्य (एलेगरी) वह

कथात्मक प्रबन्ध है जिसमें प्रस्तुत कथा के भीतर कोई अन्य अप्रस्तुत कथा भी अन्तःसलिला की भाँति छिपी रहती है "जिसमें पात्र तो यथार्थ मानव होते है । उसमें कवि पात्रों के जीवन का ऐसा मनोवैज्ञानिक और यथार्थ चित्र उपस्थित करता है और ऐसी घटनाओं और परिस्थितियों का चुनाव करता है कि पूरी कथा मानव-जीवन से सम्बन्धित किसी सूक्ष्म सत्य का महत्वपूर्ण घटना की ओर संकेत करती प्रतीत होती है । यह संकेत पूरी कथा के समन्बित प्रभाव में अधिक प्रतिफलित होता है, "आधुनिक कवियों में प्रसाद की 'कामायनी' भी रुपक कथात्मक महाकाव्य ही है ।" प्रमाण है कामायनी एक उपलब्ध रुपकत्व (प्रतीकात्मक) ।

22.2 कामायनी का रूपकत्व

श्री जयशंकर प्रसाद - ने (कामायनी : आमुख में) स्वयं ही स्पष्टतः घोषित किया है, "सत्य मिथ्या से अधिक विचित्र होता है । आदिम-युग के मनुष्यों के प्रत्येक दल ने जन्मोत्सव के अरुणोदय में जो भावपूर्ण इतिवृत्त संग्रहीत किये थे, उन्हें आज गाथा या पौराणिक उपाख्यान कहकर अलग कर दिया जाता है "तथ्य संग्रहकारिणी तर्क बुद्धि को ऐसी घटनाओं में रुपक का आरोप कर लेने की सुविधा हो जाती है ।" सच तो यह है कि रुपक के सहारे ही ऐसी घटना कथायें अनन्त काल तक जन-मानस में अपनी याद बनाये रखती हैं । आदि मानव मनु और जल-प्लावन की कथा ऐसी ही एक कथा है जो कामायनी का भी मूल वर्ण्य विषय बनी है । ध्यान से देखें तो कथा-घटना, चरित्र, उद्देश्य, वातावरण और शिल्पादि सभी साधनों से कवि ने इस कथा को रुपकमयी बनाकर अंकित किया है ।

22.2.1 कथा तत्व में - कामायनी की मूल इतिहास-सिद्ध कथा क्या है - मनु-श्रद्धा की प्रलयोपरान्त की कथा । इसके विषय में प्रसाद जी ने कहा है, "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रुपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है । इसीलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं । मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष, हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः मनु और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है ।" इन्हीं सबके आधार

पर 'कामायनी' की कथा-सृष्टि हुई है । डॉ, कामायनी कथा श्रृंखला मिलाने के लिए कहीं-कहीं थोड़ी-बहुत कल्पना को भी कथा में ले आने का अधिकार मैं नहीं छोड़ सका हूँ ।" कहना न होगा कि इस सांकेतिकतामय आधारों और कल्पना-अधिकार के प्रयोग ने कामायनी की कथा को आद्योपांत रुपकमयी बना दिया है । व्यक्त रुप से यह कथा आदिम पुरुष मनु और उनकी सहचरी श्रद्धा के संयोग से मानव-सृष्टि विकास की कथा है जिसमें दार्शनिक-मनोवैज्ञानिक रुपक भी सक्रिय है । डा. नगेन्द्र (कामायनी के अध्ययन की समस्यायें) के शब्दों में, "अहंकार की क्लेशमयी स्थिति से समरसता की आनन्दमयी स्थिति तक, मनोमय कोश से आनन्दमय कोश तक जीव का विकास उसका अप्रस्तुत पक्ष मनोवैज्ञानिक-दार्शनिक है और इस प्रकार दोनों पक्षों में निकट सम्बन्ध है जो इस कथा की एक विशेषता है ।"

अब आइये घटनाओं के रुपकत्व पर । प्रमुख घटनायें हैं - जल प्लावन, मनु-श्रद्धा-मिलन, श्रद्धा-परित्याग, इड़ा-सम्पर्क और सारस्वत प्रदेश का पुंनरुद्धार, मनु की हिमालय-यात्रा और समरस स्थिति को प्राप्त करना । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जल-प्लावन मानव-मन-स्थित भावों का उल्लेख है, मनु-श्रद्धा-मिलन, मन में श्रद्धा भाव का उदय है और श्रद्धा परित्याग-अहंकार वृत्ति से प्रेरित-परिचालित मन का श्रद्धा-भाव से रहित होना । इड़ा सम्पर्क बुद्धिवाद का सम्पर्क है और सारस्वत प्रदेश का पुनरुद्धार मन की भौतिक ऐ वर्य-प्राप्ति का प्रयत्न । हिमालय-यात्रा भूत भावनाओं की ओर गमन और समरस स्थिति मन का आनन्दावस्था को प्राप्त करना है । दार्शनिक शब्दावली में मनु जीव के प्रतीक हैं जो प्रारम्भ में मनोमय कोशस्थ हैं । रागात्मिका वृत्ति के सहयोग से वह कर्मरत होता है किन्तु निर्विकल्प होने से इस वृत्ति (श्रद्धा) को ग्रहण नहीं कर पाता । फलतः उसमें काम, वासना, अहंकारादि का जन्म होता है और कर्मपथ की बाधाओं को देखकर ईर्ष्यातुर हो उठता है । उसकी अतृप्ति उसको बुद्धि की ओर आकर्षित करती है किन्तु उस पर अबाध अधिकार के असफल प्रयत्न संघर्ष को जन्म देते हैं । भौतिकता की निस्सारता निर्वेद स्थिति को उतृपन्न करती है और जीव (मनु) पुनः आनन्द-खोज में बढ़ जाता है । श्रद्धा अथवा राग-वृत्ति के ही सहारे रहस्य का दर्शन होता है और आनन्दकोश की स्थिति प्राप्त होती है । इस प्रकार डा. नगेन्द्र के शब्दों में, "कामायनी निस्सदेह ही रुपक है । प्रसाद जी

ने कथा के मूल तत्वो को ऐतिहासिक मानते हुए उनके आधार पर ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना का उपक्रम किया । किन्तु कथा का साँकेतिक रुप उनके मन में आरम्भ से अन्त तक वर्तमान था ।"

22.2.2 चरित्र तत्व में - कामायनी के प्रमुख चरित्र हैं - मनु, श्रद्धा, और इड़ा जिसके सम्बन्ध में स्वयं कवि ने कहा है कि, 'यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रुपक है तो भी बड़ा भावमय श्लाघ्य है । यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है ।" कामायनी के मनु मन औरजीव के प्रतीक भी हैं तथा श्रद्धा-भाव और शिव-शक्ति की । इसी भाँति इड़ा बुद्धि की । इतना ही नहीं वरन् श्री शिवदान सिंह चौहान (काव्यधारा) के शब्दों में, "मनु आज के आत्मचेतन व्यक्तिवादी व्यक्ति के प्रतीक हैं । इड़ा आधुनिक पूँजीवादी समाज के वर्ग-भेद और शोषण की मान्यताओं पर आधारित बुद्धि तत्व की प्रतीक है और श्रद्धा मनुष्य की सहज भावनाओं नैतिक मूल्यों और सौहार्द्रता से युक्त मानव-हृदय के आस्थाशील तत्व की प्रती है ।" कहा तो यहाँ तक गया है कि "जो मनु और कामायनी हैं, वही आधुनिक पुरुष और नारी भी हैं, यही नहीं शाश्वत पुरुषत्व और नारीत्व भी वही हैं ।"

कामावनी के गौण पात्र हैं - मानव, आकुलि-किलात, देव, काम, लज्जा, श्रद्धा-पशु, वृषभ आदि । मानव नवमानव का आकुलि-किलात आसुरी वृत्तियों के, देव इन्द्रिय भोगों के, काम और लज्जा मानवीय भावनाओं के, श्रद्धा-पशु अहिंसा अर्थात् सहज जीव दया का और वृषभ धर्म-भाव का प्रतीक है ।

22.2.3 उद्देश्य तत्व में - वाह्य कथा के अनुसार ग्रन्थान्त में मनु कैलाश पर्वत पर पहुंच कर तपस्या लीन होते हैं और चिति अवस्था को प्राप्त करते हैं । वास्तविकता मात्र इतनी ही नहीं है । दार्शनिक रुपक के शब्दों में कहें तो कैलाश पर्वत परम शक्ति शिव का धाम है जहाँ पर शक्तिरुपा श्रद्धा के संकेत पर मनु जीव ब्रह्मलीन होते हैं और मनोवैज्ञानिक शब्दों में मन श्रद्धा के साथ ही आनन्द की स्थिति को प्राप्त करता है । इस प्रकार ग्रन्थ के उद्देश्य में भी कवि ने रुपकत्व को ही प्रकट किया है ।

22.2.4 वातावरण तत्व में - 'कामायनी' में वाह्य वातावरण के साथ-साथ आद्योपांत आन्तरिक वातावरण भी अंकित किया गया है । ध्यान से देखें तो अधिकता भी उसी की है । आधुनिक मनोविज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि बालक में जन्मना शुद्ध चेतना रहती है जो अहं का बोध कराती है । उसमें सर्व प्रथम कौतूहल, जिज्ञासा, भयादि स्वयंम् मनोवृत्तियाँ जन्म लेती हैं । कामायनी के प्रारम्भ में भी मन (मनु) में इन्हीं मनोवृत्तियों का उदय दिखाया गया है । इस सम्बन्ध में प्रो. रमेशचन्द्र गुप्त ने ठीक कहा है, कामायनी का आरम्भ चिन्ता सर्ग से हुआ है । मनु चिंताग्रस्त होकर हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठे हैं । धीरे-धीरे उनमें आशा का संचार होता है और तदन्तर 'श्रद्धा' वृत्ति का संसर्ग प्राप्त होता है । उनका मन 'काम और वासना' में उलझने लगता है और इस प्रकार 'कर्म' 'ईर्ष्या' और 'संघर्ष' करते हुए वे अन्त में आनन्द को प्राप्त करते हैं । स्पष्ट है कि हमारे मन में उठने वाला भाव-क्रम भी इसी के अनुरुप चलता है ।" इतना ही नहीं वरन् स्थान-वर्णन में भी कवि ने रुपकत्व का समावेश किया है । इस दृष्टि से देखें तो हिमगिरि का उत्तुंग शिखर अहं-बोध का, यज्ञ-कर्म हिंसा का अथवा पाप-कर्म का, सारस्वत नगर प्राणमय कोस का, मानसरोवर और कैलाश क्रमशः समरसता की अवस्था और आनन्दमय कोश का प्रतीक हैं । इसी भाँति त्रिपुर इच्छा, क्रिया और ज्ञान का प्रतीक है । जहाँ तक प्रश्न है, वस्तु-वर्णन की कोमलता में अबाध भोग स्पष्ट है ।

22.2.5 शिल्प तत्व में - कामायनी के सभी सर्गों का नामकरण और क्रम कथनानुसार होने के साथ-साथ रुपकात्मक भी है और मनोवैज्ञानिक-दार्शनिक रुपक को स्पष्ट करता है । इसी भाँति शब्दावली में भी नाना प्रकार के पारिभाषिक शब्दों का समावेश करके कवि ने रुपकत्व को बल प्रदान किया है । कंचुक, समरस, चिति, महाचिति, ताण्डव, नटराज, पंचतत्व, काल, भैरव, माया आदि दार्शनिक शब्द और चिन्ता, आशा, लज्जा, काम, श्रद्धा, निर्वेद आदि मनोवैज्ञानिक शब्द ऐसे ही कुछ उदाहरण हैं । अलंकार-योजना के अन्तर्गत भी प्रतीकों या रुपकों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया गया मिलता है । श्रद्धा, इड़ा और मनु को सौन्दर्य-अंकन वाले प्रसंगों में भी इनको आसानी से परिलक्षित किया जा सकता है ।

22.3 कुछ आरोप और समाधान

'कामायनी' में रुपकत्व की स्थिति को सभी विद्वान् एकमत से स्वीकार करते हैं । फिर भी कुछ विद्वानों ने इस पर कुछ आरोप लगाये हैं । प्रमुख आरोप और समाधान निम्नांकित हैं -

1) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास) के अनुसार, "जिस समन्वय का पक्ष कवि ने अन्त में सामने रखा है, उसका निर्वाह रहस्यवाद की प्रवृत्ति के कारण काव्य के भीतर नहीं होने पाया है । पहले कवि ने कर्म को बुद्धि या ज्ञान की प्रवृत्ति के रुप में दिखाया, फिर अन्त में कर्म और ज्ञान के बिन्दुओं को अलग-अलग रखा ।" इस आरोप का सटीक समाधान डा. नगेन्द्र कर देते हैं - "श्रद्धा केवल भावना नहीं, भाव भी नहीं, वह जीवन की आस्तिक बुद्धि है, विश्वास और आस्था का प्रतीक है । भावलोक तो मात्र भावुकता, केवल इच्छा का प्रतीक है, जबकि श्रद्धा जीवन के अस्तित्व में आस्था अर्थात् विश्वासयुक्त जीवनेच्छा है।" तथा प्रो. रमेशचन्द्र गुप्त के शब्दों में, "वस्तु-रचना की दृष्टि से भी श्रद्धा का इन तीनों (भाव, ज्ञान, क्रिया) से अलग होना आवश्यक था । कामायनी की कथा का उद्देश्य समरसता की प्राप्ति करके चिदानन्दलीन होना है - और वह कार्य मुख्य पात्र के द्वारा ही सम्पादित होना चाहिये था।"

2) रुपक कथा काव्य के पात्र घटनायें कल्पित होते हैं जबकि कामायनी के प्रमुख पात्र और कथा घटनायें ऐतिहासिक हैं । इस सम्बन्ध में यही कहना पर्याप्त है कि कामायनी के पात्र, कथा और घटनाओं में इतिहास आधार मात्र ही नहीं है कवि ने इनको अधिकांशतः रुपकत्व के द्वारा कल्पनामय भी बना दिया है ।

3) जल-प्लावन और सारस्वत नगर की संहारक घटनायें एक सी हैं । इसी से इनका अन्तमय कोश और प्राणमय कोश का रुपक सटीक नहीं बैठता। इसके उत्तर में दृष्टव्य यह है कि जल-प्लावन का कारण है - विलासाधिक्य और इसमें देव-सृष्टि का पूर्ण विनाश हो जाता है । सारस्वत नगर में ऐसा नहीं है । दूसरे अन्नमय कोश से प्राणमय कोश उच्चस्तरीय है ।

4) मनु और मानव में प्रायः समान रुपकत्व है । यहाँ पर आरोपकर्त्ता भूल गये हैं कि मनु प्रारम्भ से ही पूर्ण और संतुलित नहीं है जबकि मानव श्रद्धा और इड़ा से एक साथ युक्त होकर पूर्ण भी हैं और संतुलित भी । दूसरे, कैलाश-यात्रा से पूर्व ही श्रद्धा द्वारा मानव इड़ा को सौंप दिया जाता है और श्रद्धा के साथ-साथ इड़ा से भी प्रभाव-ग्रहण कर वह पूर्ण और सम्यक् बनता है । तीसरे, मनु पूर्व-सृष्टि के प्रतीक हैं जबकि मानव नव सृष्टि का । अतएव मनु और मानव के रुपक में भी पूर्ण भेद है ।

5) डा. देवराज (छायावाद का पतन) के अनुसार "मनोवैज्ञानिक रुपक के निर्वाह के फेर में प्रसाद जी न तो अपने पात्रों को सुस्पष्ट व्यक्तित्व दे सके हैं और न कथा-प्रवाह की रक्षा कर सके हैं ।" इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम द्रष्टव्य बात तो यह है कि 'कामायनी' में आद्योपान्त ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक कथा-घटनाएँ एक साथ चली हैं और वह भी प्रभावशाली रुप में । दूसरे, प्रसाद जी के सभी चरित्र सुस्पष्ट व्यक्तित्व से युक्त हैं और वह भी दोहरे-तीहरे रुप में । जहाँ तक प्रश्न है कथा-प्रवाह का, आन्तरिक कथा-रुपक होने के कारण उसकी गति धीमी होनी स्वाभाविक ही थी ।

22.4 उपसहार

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कामायनी में कथा, चरित्र, वातावरण, उद्देश्य और शिल्प आदि सम्भव साधनों से रुपकत्व का समावेश किया गया है और कवि ने आद्योपांत उसका निर्वाह किया है । कहीं-कहीं उसमें असंगति आ सकती है, आयी भी है किन्तु वह मूल कथा-चरित्रों में विशेष बाधक नहीं बनती इसके अतिरिक्त बाल की खाल निकालने की प्रवृत्ति से किये गये तत्समबन्धी दोषरोपण भी न तो सबल हैं और न अकाट्य । यहाँ पर यह कहना भी अनुचित न होगा कि 'कामायनी' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है जिसमें दोहरे-तीहरे रुपक का काव्य है क्योंकि इसके रुपक में तत्सम्बन्धी सभी आवश्यक लक्षण पूरी-पूरी मात्रा में उपलब्ध होते हैं । सचमुच, डा. विश्वम्भर मानव (खड़ी बोली के गौरव-ग्रन्थ) के शब्दों में "कामायनी एक विराट् सामंजस्य की सनातन गाथा है ।"

22.9 सहायक पुस्तकें

1 जयशंकर प्रसाद : नन्ददुलारे वाजपेयी

2 साहित्यिक निबन्ध : रामनाथ शर्मा

3 कामायनी का मूल्यांकन : गौरी शंकर

NOTES

NOTES

NOTES

NOTES

NOTES

NOTES

ಆದೇಶ ಸಂಖ್ಯೆ : ಕರಾಮುವಿ/ಅಸಾವಿ/4–060/2013–2014 ದಿನಾಂಕ : 24–09–2013
ಒಳಪುಟ : 60 GSM MPM ವೈಟ್ ಪ್ರಿಂಟಿಂಗ್ ಪೇಪರ್ ಮತ್ತು ಹೊರಪುಟ: 170 GSM ಆರ್ಟ್‌ಕಾರ್ಡ್
ಮುದ್ರಕರು : ಅಭಿಮಾನಿ ಪಬ್ಲಿಕೇಷನ್ ಲಿ., ಬೆಂಗಳೂರು–10 ಪ್ರತಿಗಳು : 1200

Karnataka State Open University

Manasagangotri Mysore - 570 006

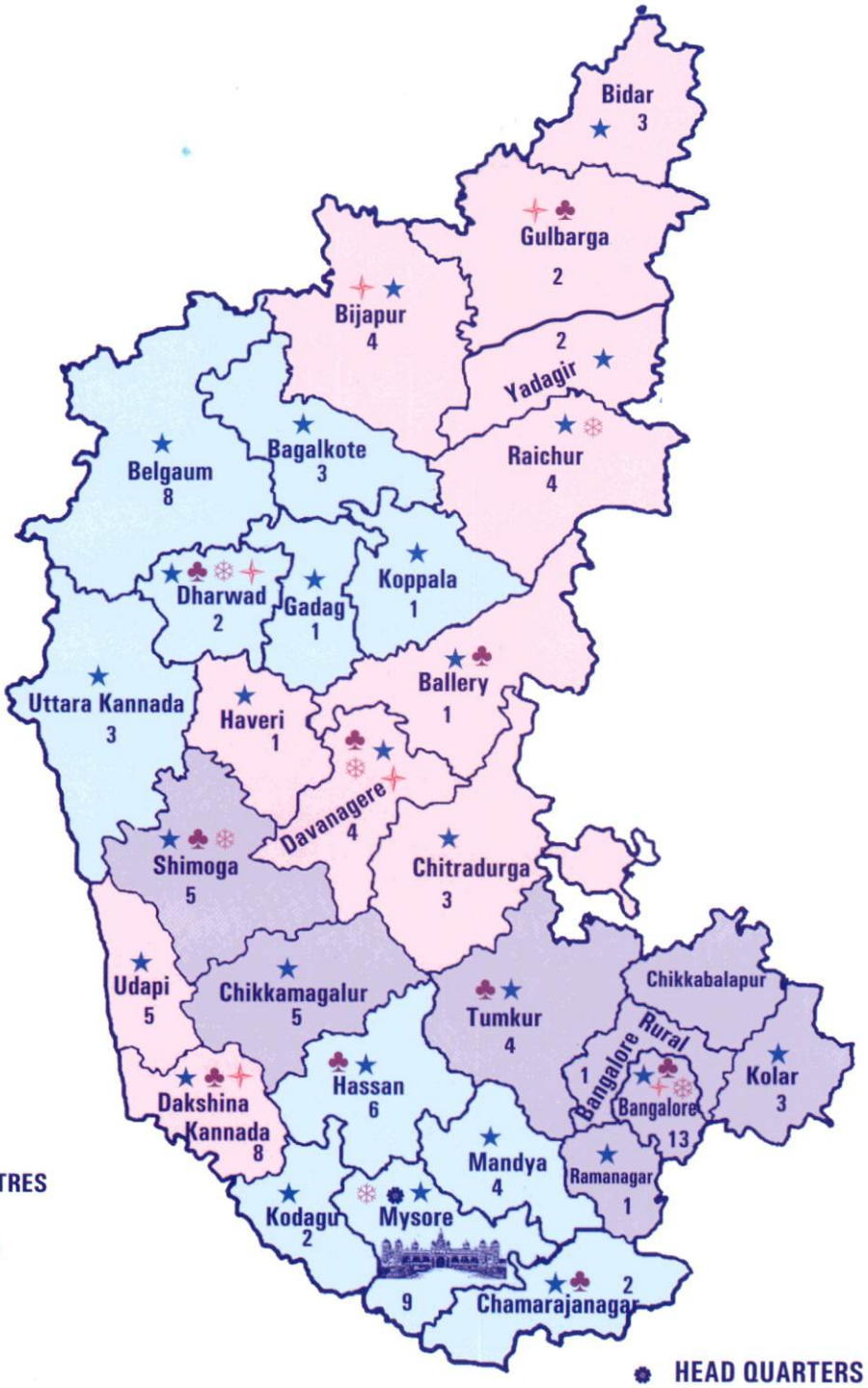

♣ **REGIONAL CENTRES**

Bangalore
Davanagere
Gulbarga
Dharwad
Shimoga
Mangalore
Tumkur
Hassan
Chamarajanagar
Bellary

● **HEAD QUARTERS**

★ **Total Study Centres : 111**

♣ **Regional Centres : 10**

❄ **B.Ed Study Centres : 10**

✦ **M.Ed Study Centres : 08**

Karnataka State Open University

Manasagangothri, Mysore - 570 006.

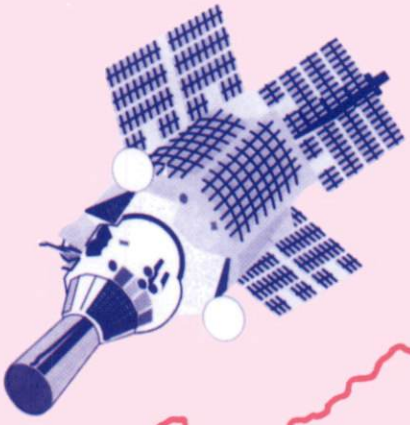

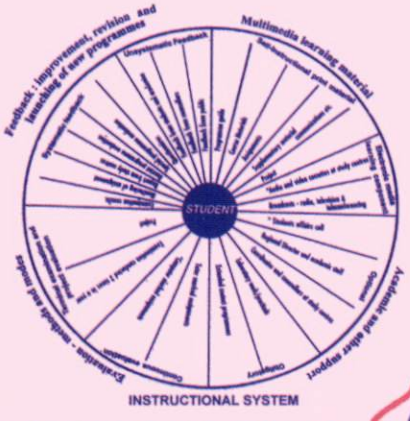

INSTRUCTIONAL SYSTEM

INSTRUCTIONAL SYSTEM